[illegible]

[illegible]

इसमें निम्न लिखित विषय हैं

[(१) [illegible], (२) [illegible], (३) [illegible], (४) [illegible], (५) [illegible] (६) [illegible], (७) [illegible], (८) [illegible]]

लेखक और प्रकाशक,

[illegible]

[illegible]

द्वितीयवार [illegible]

विक्रम संवत् [illegible]

[illegible]

"वैदिक धर्म"

मासिक पत्र। वार्षिक मूल्य डाकव्यय समेत ३॥) रु. है।

वैदिक तत्व ज्ञानका विचार और प्रचार करनेवाला यह एक ही मासिक पत्र है।

(१) "वैदिक धर्म" पढ़नेसे आपका उत्साह बढ़ेगा, आपकी उदासीनता दूर होगी और आप परम पुरुषार्थी बनेंगे।

(२) शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक और आत्मिक उन्नति करनेके वैदिक मार्ग आपको ज्ञात हो सकते हैं।

(३) "वैदिक धर्म" पूर्ण उत्साहमय धर्म है। भयभीतोंको अभय देना, निर्बलोंको सबल करना, अल्पवित्तोंको पवित्र बनाना, तात्पर्य मुक्ति, स्वतंत्रता, आनंद और यशका मार्ग बताना इसका उद्देश है।

(४) कठिन समयमें "वैदिक धर्म"का एकएक वाक्य आपको सत्यधर्मके प्रकाश द्वारा आधार दे सकता है और आपके मनकी शांति स्थिर रख सकता है।

(५) "वैदिक धर्म" आत्माका विकास करना चाहता है।

आप शीघ्र ग्राहक बन जाइए और अपने मित्रोंको ग्राहक बननेकी प्रेरणा कीजिए।

मंत्री—स्वाध्याय मंडल, औंध (जि. सातारा.)

आगम निबंधमाला । ग्रंथ ७

ॐ

मृत्युको दूर करनेका उपाय।

इसमें निम्न लिखित निबंध हैं।

[(१) मृत्युको दूर करनेका उपाय, (२) आयुष्य बढाओ, (३) दीर्घ आयुष्य, (४) आत्मविश्वास, (५) आत्म-परीक्षा, (६) सबसे बडा आश्चर्य, (७) अदीनाः स्याम शरदः शतम्, (८), सौ वर्षकी आयुका कार्य]

लेखक और प्रकाशक,

श्रीपाद दामोदर सातवळेकर.

स्वाध्याय-मंडल, औंध (जि० सातारा).

द्वितीयवार २०००

विक्रम संवत् १९७८, शालिवाहन १८४३, इसवी सन् १९२२.

प्रकाशक—श्रीपाद दामोदर सातवळेकर, (स्वाध्याय मंडलके लिये)
(औंध, जि० सातारा.)

मुद्रक—रामचंद्र येसु शेडगे, 'निर्णयसागर' छापखाना,
२३, कोलभाट गल्ली, मुंबई.

ॐ

मृत्युको दूर करो।

"मृत्युके पांवको दूर हटाते हुए, जब आप दीर्घ आयुको खूब लंबा बनाकर धारण करके आगे बढेंगे; तब आप अभ्युदय को प्राप्त होते हुए, प्रजा और धनसे युक्त हो कर, पूज्य, शुद्ध और पवित्र बनेंगे।"

अथर्व. १०।१८।२

"मृत्युके पाश तोड दो।"

जीवितां ज्योतिरभ्येह्यर्वाङा त्वा हरामि शतशारदाय ॥ अवमुंचन्मृत्युपाशानशस्तिं द्राघीय आयुः प्रतरं ते दधामि ॥

अथर्व. ८।२।२

"जीवितोंकी ज्योतिके पास आजाओ, आओ तुमको सौ वर्षकी पूर्ण आयुतक पहुंचाता हूं; मृत्युके पाशोंको तथा सब अप्रशस्त विघ्नोंको दूर करके प्रशस्त दीर्घ आयु तुमको देता हूं।"

"ब्रह्मचारीका अंतिम संदेश।"

जन्म		मृत्यु
(३ पौष सं. १९५६) (मार्गशीर्ष, व. ३ शके १८२१) (१९ डिसेंबर सन १८९९)	चि. नारायण ऊर्फ ब्रह्मचारी नरदेवके अंतिम वाक्य।	(२४ वैशाख सं. १९७८) (चैत्र कृ. १४ शके १८४३) (६ मई सन १९२१)

(१) कर्म योगके विना उन्नतिका दूसरा कोई उपाय नहीं है। * * *

(२) जब तक ऐसे आपसके झगडे रहेंगे, तब तक देश कभी उठ नहीं सकता। * *

(३) सबको मिल कर प्रयत्न करना चाहिए।

(४) देशके लिये जीवन जावे तो कुछ परवाह नहीं। * * * *

(५) मेरे प्यारे दोस्तो! देशकी स्वतंत्रताके लिये, अपनी स्वाधीनताके लिये, देशकी प्रतिष्ठाके लिये, प्राचीन गौरवकी रक्षाके लिये, खून बहाओ, अकेले अकेले खून बहाओ .... *

(६) देशकी स्वतंत्रताके लिये तलवार .... तिलक, तिलक, तिलक....स्वतंत्रताका जल ....।

* * * * *

मृत्युसे बोध।

ज्येष्ठ पुत्रका मृत्यु मेरे सामने ति. २४ वैशाख सं. १९७८ के दिन सायंकालके समय हुआ। जिस दिन मृत्यु हुआ उस दिन सबेरे उसने मुझे कहा कि, "आज मेरा मृत्युका दिन है, इस लिये लोकमान्य तिलक महोदयजीका श्रीमद्भगवद्गीतारहस्य अथवा कर्मयोगशास्त्र ले आओ। मृत्युके समय इसीका पाठ करना चाहिये।" वारंवार उसके कहनेके कारण उक्त पुस्तक उसको दी गई। पुस्तक मिलनेके पश्चात् उसने बडे प्रेम और विलक्षण श्रद्धासे उसको अपनी छातीसे लगाई, पुस्तक खोलकर कुच्छ श्लोक पढे और थोडी देरके बाद कहा कि—

"कर्मयोगके विना उन्नतिका दूसरा कोई मार्ग नहीं है।" ... "जबतक ऐसे आपसके झगडे रहेंगे, तबतक देश कभी उठ नहीं सकता।" ... "सबोंको मिलकर प्रयत्न करना चाहिए।"

तदनंतर भगवद्गीताग्रंथको अपनेपासही रखलिया और बडी देरतक शांत रहा। पश्चात् निश्चयपूर्ण स्वरसे कहा कि—

"देश के लिये जीवन जावे तो कुच्छ पर्वाह नहीं।"

जिस समय यह वाक्य बोला गया, उस समय शक्ति अत्यंत क्षीण हो रहीथी और यह समय बिलकुल अंतिम समय है ऐसा हम सबोंका निश्चय हो चुका था। इतनेमें सायं कालके करीब साडे पांच बजनेके समय हम सबोंको अपने पास बुलाकर अपना अंतिम उद्देश स्पष्ट शब्दोंमें निम्नप्रकार कहा—

"मेरे प्यारे दोस्तो! देशकी स्वतंत्रताके लिये, अपनी स्वाधीनताके लिये, देशकी प्रतिष्ठाके लिये, प्राचीन गौरवकी रक्षाके लिये, खून बहाओ, अकेले अकेले खून बहाओ......"

"देश की स्वतंत्रता के लिये तलवार ...... तिलक, तिलक, तिलक ...."

यह सुनकर डा. सुखदेवजीने, जो पासही मौजूद थे, पूछा कि 'क्या चाहते हो? क्या तुमको जल पीना है? इस प्रश्नके उत्तरमें ब्रह्मचारीने कहा कि—

"स्वतंत्रता का ... जल ...."

इसके पश्चात् ब्रह्मचारी उस अवस्थामें पहुंचा कि जहां सबको जाना है।

जगत् में जो जो घटनाएं होती हैं वेह हमें बोध देती हैं, यदि हम उन घटनाओंसे बोध लेंगे, तो हमारा कल्याण होगा, अन्यथा कष्टोंसे बचना कठिन है। उक्त घटनासे भी हमें एक बोध मिल सकता है, वह यह है कि, '**अंतिम समयके विचार अत्यंत उत्तम और पवित्र होने चाहिये।**' श्री. भगवद्गीता (अ. ८।५,६) में कहा है—

अंतकाले च मामेव स्मरन्मुक्त्वा कलेवरम्॥
यः प्रयाति स मद्भावं याति नास्त्यत्र संशयः॥ ५॥
यं यं वापि स्मरन्भावं त्यजत्यंते कलेवरम्॥
तं तमेवैति कौन्तेय सदा तद्भावभावितः॥ ६॥

"अंतकालमें जो मेरा स्मरण करता हुआ देह त्यागता है, वह मेरे स्वरूपमें निःसंदेह मिलजाता है। अथवा हे कौंतेय! सदा जन्मभर उसीमें रंगे रहनेसे मनुष्य जिस भावका स्मरण करता हुआ अंतमें शरीर त्यागता है वह उसीभावमें जा मिलता है।"

तात्पर्य यह कि यदि देह त्यागनेके समय अंतमें उच्च भाव रहे, तो उच्च अवस्थामें द्वितीय जन्म होता है, और यदि हीन भाव मनमें रहे, तो हीन परिस्थिति में जन्म होता है। इसप्रकार अगले जन्मका बीज हम इसी जन्मके अंतिम समयमें बोते हैं। इस नियमके अनुसार उक्त ज्येष्ठ पुत्रका द्वितीय जन्म किस परिस्थितिमें होगा, इसका अनुमान हो सकता है। परंतु यहां हमको मरे हुओंका अधिक विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है, क्यों कि ईश्वरीय नियमों के अनुसार उनकी जो अवस्था होनी है वह हो जायगी। हमें यहां जीवित मनुष्यों के लिये ही विचार करना चाहिये और आवश्यक ज्ञान लेना चाहिये।

मृत्युको दूर करनेका उपाय।

(१) मृत्युका भय।

प्राणिमात्रको मृत्युका भय है। ज्ञानी तथा अज्ञानी, छोटा अथवा बडा, श्रीमान किंवा दरिद्री, मनुष्य और मनुष्येतर सबही मृत्युसे भयभीत होते हैं। छोटेसे छोटा कृमि मृत्युका संभव प्राप्त होनेपर वहांसे दूर भाग जाता है, और समझता है कि, मेरे इस पुरुषार्थसे मृत्यु दूर हुआ है, और अब मुझे इस मृत्युसे मरनेका भय नहीं है। छोटेसे कृमिकीटका अपने पुरुषार्थ पर यह दृढ विश्वास सच मुच आश्चर्य करने योग्य है!!! यदि इतना विश्वास मनुष्यके अंतःकरणमें अपने पुरुषार्थके विषयमें हो जायगा, तो निःसंदेह बेडा पार हो जायगा!

यह विचारणीय बात है, कि निसर्गतः अज्ञानी कृमिकीटोंकोभी अपने मृत्युका पता कैसा लगा, और उस स्थानसे भाग जानेका पुरुषार्थ करनेका उत्साह उनको किसने सिखलाया? इसका विचार करते करते विचारी मनुष्य पुनर्जन्म पर विश्वास करने लग जाता है, और समझता है, कि हरएक प्राणिमात्रके अंदर जो यह मृत्युका भय लगा हुआ है, वह मृत्युके अनुभवके कारण ही है। पहिले कईवार इसने स्वयं मृत्युका अनुभव किया है और देखा है, कि मृत्युसे क्या आपत्ति होती है। मृत्युके अनिष्ट अनुभवका गुप्त ज्ञान उसकी सूक्ष्म बुद्धिमें छिपा हुआ रहता है, और यही उसको प्रेरणा करता है, कि तुम मृत्युसे बचनेका यत्न करो। अर्थात् पुनर्जन्म सत्य है, इसी लिये हरएक प्राणी मृत्युसे भयभीत होता है; यदि पूर्व मृत्युका अनुभव न होता, तो इस देहमें आनेके पश्चात्

मृत्युकी कल्पना भी किसी प्राणीको न होती, और जिसकी कल्पना भी नहीं होती, उसके विषयमें भय होना सर्वथा असंभव है।

(२) पुरुषार्थ पर विश्वास।

प्राणिमात्र मृत्युसे भागनेका यत्न करते हैं। इस भागनेकी क्रियामें भी मृत्युको दूर करनेका ही पुरुषार्थ है। पुरुषार्थसे मृत्युको दूर किया जा सकता है, यह दृढ विश्वास इसमें निःसंदेह है। यह विश्वास सब प्राणियोंमें कैसे उत्पन्न हुआ? क्या कभी किसीने अपने पुरुषार्थसे मृत्युको दूर किया था? निःसंदेह मानना पडेगा, कि प्रत्येक जीवात्माको अनुभव है, कि पुरुषार्थसे मृत्युको दूर हटाया जा सकता है। किसी न किसी समय हरएक जीवात्माने अवश्यही मृत्युको जीत लिया ही होगा। काल अनंत है, और जन्ममरणपरंपरा भी अखंड है। इस लिये मृत्युको दूर करनेका पुरुषार्थ भी अनंत कालसे चलही रहा है। कोई पुरुषार्थी योगी योग्य मार्गसे चलता हुआ मृत्युको जीत लेता है, और अमृत प्राप्त करता है। परंतु अन्य प्राणी यथाकथंचित् अपनेसे जितना हो सकता है उतना पुरुषार्थ करते ही रहते हैं।

इस भूमंडल पर सैकडों योनियाँ हैं, परंतु उन सबमें मनुष्य ही एक ऐसा है कि जो मृत्युको जीतनेका प्रयत्न करके सफलता प्राप्त कर सकता है। वैदिक धर्ममें सर्वत्र इसी योगमार्गका उल्लेख है, जिसका अंशतः निरूपण "वैदिक-प्राण-विद्या" नामक पुस्तकमें किया है। इस मार्गका अवलंबन करके इस आर्यदेशके ऋषि, मुनि, तपस्वी, योगी और ज्ञानी मृत्युको जीत कर अमर हो गये थे, इसलिये पूर्ण विश्वास है कि जो इस समयमें भी इस मार्गका अवलंबन करेंगे, उनको उत्तम सिद्धि अवश्य प्राप्त हो सकती है।

यहां कई लोक पूछेंगे, कि यदि ऋषि, मुनि अमर हो गये थे, तो वे इस समय कहां हैं? इस प्रश्नका उत्तर अमरत्वके स्वरूपका ज्ञान होनेके पश्चात्ही दिया जा सकता है। इसलिये यहां मृत्यु क्या है और जन्म क्या है, इसका विचार करता हूं।

(३) जन्म और मरणका संबंध।

हरएक प्राणी जन्म लेता है, और जो जन्म लेता है उसको अवश्य ही मरना है। हरएक प्राणी मात्रके लिये मरना अपरिहार्य है। जो अपरिहार्य है अर्थात् जो बदला नहीं जा सकता, उसके विषयमें भय, शोक, मोह धारण करना वास्तविक मूर्खताका ही काम है। परंतु यह मूर्खता प्रायः सबमें ही विद्यमान है। व्याख्यानोंमें और लेखोंमें धैर्यका उपदेश करनेवाले भी ऐन परीक्षाके समय कोलाहल मचाते हैं। परंतु कई ऐसे सत्पुरुष देखे हैं कि जिनका मन मृत्युके प्रलय कार्यके समयमें भी अचल, स्थिर और गंभीर रहता है!! ये ही सत्पुरुष हैं कि जिनके समान हरएक धार्मिक मनुष्यको बननेका प्रयत्न करना चाहिए।

मनुष्यके व्यवहारमें एक बडा आश्चर्य है, कि वह जन्मके समय आनंद मानता है; और मृत्युके समय दुःख करता है। परंतु उसको पता नहीं है, कि यदि किसी स्थान पर किसीका मृत्यु न हुआ, तो दूसरे स्थानपर किसीका जन्म भी नहीं हो सकता। अर्थात् यदि आप पुत्र जन्मका आनंद लेना चाहते हैं, तो इस आनंदके लिये किसीके मृत्युका दुःख किसी न किसीको स्वीकारना ही चाहिए। एक स्थान पर जिसका मृत्यु होता है, उसीका दूसरे स्थान पर जन्म होता है; इसलिये स्पष्ट है, कि मृत्यु होनेके बिना जन्म नहीं हो सकता। यही कारण है कि सब सत्पुरुष न तो जन्मसे आनंदित होते हैं और न मृत्युसे डरते हैं। जो जन्मसे आनंदित होगा उसको मृत्युसे अवश्यमेव दुःख होगा। इसलिये "सुख दुःख आदि द्वंद्वोंको समान समझ कर, हरएक अवस्थामें हमें अपने कर्तव्यमें तत्पर होना चाहिए, और सदा अपना मन स्थिर, शांत और गंभीर रखनेका यत्न करना चाहिये।"

जन्म और मृत्यु ये दोनों परस्पर सापेक्ष हैं। एकके कारण दूसरा रहता है, इस लिये स्पष्ट है, कि यदि एकके विषयमें प्रेम न रहेगा, तो दूसरेके विषयमें भय भी नहीं रह सकता। यद्यपि साधारण मनुष्य मृत्युसे दूर भागना चाहते हैं, तथापि कई असाधारण सत्पुरुष समय समय पर

आनंदसे मृत्युको स्वीकारते हैं। उनको मृत्युका उतना भय नहीं होता कि जितना साधारण मनुष्यको होता है। जनताको निर्भय करनेके उच्च ध्येयकी सिद्धिके लिये राष्ट्रीय वीर और देशहितैषी विद्वान भपनी आहुती राष्ट्रीय महायज्ञमें अर्पण करके कीर्तिरूपसे अजरामर होते हैं। इनके हृदयमें मृत्युका भय यत्किंचित् भी नहीं होता है। राष्ट्रके इतिहासमें ऐसे सुवीरोंके नाम सुशोभित हुए हैं। इन वीरोंके अंतःकरण देखनेसे पता लगता है, कि वहां मृत्युका भय नहीं था। उनके अंदर मृत्युके साथ युद्ध करनेका साहस था। इस लिये मृत्युके समय उनका हृदय आनंदसे परिपूर्ण होता था। इन वीरोंके चरित्र देखनेसे हमें पता लगता है कि, मनुष्यका मन ऐसा निर्भय भी बनाया जा सकता है। सारांश कि सुशिक्षा आदि द्वारा यदि विशेष संस्कार मनके ऊपर किये जायंगे, तो मनुष्यका मन उक्त प्रकार निर्भय हो सकता है। परंतु ये इष्ट संस्कार बचपनसे ही मनुष्यके मन पर होने चाहिए। बडी उमरमें भी किये जा सकते हैं, परंतु अधिक परिश्रमकी आवश्यकता होगी।

(४) मरणका स्वरूप।

जन्म और मरण कैसा होता है, जागृति, स्वप्न, सुषुप्ति और मृत्यु इनकी घटना कैसी है, इसका अब विचार करना है। इसका उत्तम ज्ञान होनेके लिये मनुष्यके वास्तविक स्वरूपका पता हमें लगना चाहिए। मनुष्यका जो यह बाहिर का स्थूलशरीर दिखाई देता है, उसके अतिरिक्त उसके अंदर तीन चार शरीर और विद्यमान हैं। ये सब शरीर मिलकर मनुष्य होता है। इसका स्पष्टीकरण निम्न लिखित कोष्टकसे हो सकता है—

कोश	देह	साधन	तत्व
अन्नमय कोश……	स्थूलशरीर……	बाह्यदेह……	पंच महाभूत
प्राणमय ” ……	सूक्ष्मशरीर……	{ प्राण इंद्रिय } ……	{ वायु तन्मात्र

मनोमय कोश......कारणशरीर... { मन चित्त / अहंकार } ......अहंकार

विज्ञानमय" } / आनंदमय" } ......महाकारण,... { बुद्धि / केवलता } ......{ महत्तत्त्व / मूल प्रकृति

इन पदार्थोंका चित्र निम्न प्रकार बन सकता है—

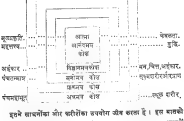

इतने साधनोंका और शरीरोंका उपयोग जीव करता है। इस बातको प्रथम विचारकी दृष्टिसे समझना चाहिए। तत्पश्चात् मृत्युका रूप ध्यानमें आ सकता है।

जागृतिमें मनुष्य स्थूल शरीरके साथ कार्य करता है। स्वप्नमें सूक्ष्म शरीरके साथ रहता है, और सुषुप्तिमें कारणशरीरमें विराजता है। स्वप्नमें स्थूल शरीरका संबंध कम होता है, और सुषुप्तिमें स्थूल और सूक्ष्म शरीरोंके साथ संबंध शिथिल होता है। इसका स्पष्टीकरण निम्न चित्रोंसे हो सकता है—

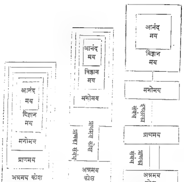

जागृतिकी अवस्था । स्वप्न अवस्था । सुषुप्ति अवस्था ।

जागृतिमें सब शरीरोंका कार्य स्थूल देहके साथ होता रहता है, स्वप्न अवस्थामें अर्थात् जब ख्वाब आते हैं तब स्थूल शरीर शिथिल रहता है और कार्य नहीं करता। परंतु इस अवस्थामें स्थूल शरीरके साथ प्राणका संबंध रहता है, और मनही संकल्प विकल्प करता रहता है। मनमें जो संकल्प विकल्प आते हैं वेही प्रायः स्वप्नमें दिखाई देते हैं। अपने ही मनके संकल्पविकल्पोंके साथ इस समय औरभी कल्पनायें सम्मिलित होती हैं। सर्व व्यापक अहंकार और महत्तत्वमें जो संपूर्ण मानव जातिके मानसिक लहरोंके परिणाम गुप्त रहते हैं, उनके साथ इस समय उनका संबंध आता है, और अघटित घटनाओंकाभी इस समय उसको

प्रत्यक्ष हो सकता है। इस लिये कइयोंको ऐसे विलक्षण स्वप्न आते हैं, कि जिनका भूत वर्तमान अथवा भविष्य कालीन बातोंके साथ स्पष्ट संबंध अनुभवमें आता है। यह सारांशसे स्वप्न अवस्थाका स्वरूप है।

सुषुप्ति अवस्थामें मनभी लीन हो जाता है। और साथ साथ सूक्ष्म और स्थूल देहसी सो जाते हैं। मन लीन होनेके कारण इस समय कुछभी ज्ञान नहीं होता। परंतु इस अवस्थामें विशेषता यह है, कि जो विचार सुषुप्तिके प्रारंभमें रहता है वही जागृतिके आरंभमें रहता है, और सुषुप्तिमें भी वही विचार कार्य करता है। इसलिये शुभविचार ही जागृतिके अंतमें मनमें धारण करनेका अभ्यास करना चाहिए। ऐसा अभ्यास होनेसे न केवल प्रतिदिनके व्यवहारमें लाभ होगा, प्रत्युत मृत्युके पश्चात् भी इससे फायदा होगा। इसका कारण आगे जाकर स्पष्ट हो जायगा।

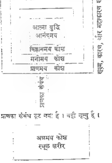

सुषुप्तिमें तथा स्वप्नमें शरीर स्थिर हो जाता है। इस समय शरीर इसलिये जीवित रहता है, कि प्राणका संबंध टूटता नहीं। यदि प्राणका संबंध टूट जायगा, तो स्वप्न अवस्थामें और मृत्युमें कोई भेद ही नहीं रहेगा। प्राणका संबंध रहनेसे जैसा स्वप्न अवस्थाका अनुभव होता है, वैसाही अनुभव प्राणका संबंध, स्थूल शरीर के साथ, टूट जानेपर भी मृत्युके पश्चात् हो सकता है। क्यों कि संकल्प विकल्प करनेवाला सूक्ष्म शरीर मृत्युके पश्चात् भी विद्यमान ही रहता है, यह बात पूर्व चित्रसे स्पष्ट होगी।

मृत्युके पश्चात् स्थूल शरीर पृथ्वीपर रहता है, और प्राणके साथ अन्य शरीर परमेश्वरके नियोजित मार्गसे चलने लगते हैं। यद्यपि स्थूल शरीरका कार्य इस अवस्थामें बंद होता है, तथापि सूक्ष्म शरीर, कारण शरीर आदिके धर्म गुप्त नहीं होते। अर्थात् प्रति रात्रिके समय स्वप्नमें जो अवस्था हरएक अनुभव करता है वही अवस्था मृत्युके पश्चात् अनुभवमें आती है। यदि पाठक अपने सब शरीरोंके गुणधर्मोंका विचार अपने मनमें स्थिर करेंगे, तो उनको पता लग जायगा, कि स्वप्न में और मृत्युमें बहुत ही अल्प अंतर है।

स्वप्नका अनुभव क्या है? ऐसा प्रश्न यहां हो सकता है। स्वप्नका अनुभव हरएक जानता है। यदि किसीका शरीर फोडों, फुन्सीयों, ज्वर आदिसे कष्टपूर्ण बना होगा, तो उन कष्टोंका अनुभव स्वप्नमें उसको नहीं होता तथा सुषुप्ति अर्थात् गाढ निद्रामें भी नहीं होता। हरएक का अनुभव यही है। शरीरके फोडोंका दुःख स्वप्नमें कदापि नहीं होता; इसका यही तात्पर्य है कि इस स्वप्न अवस्थामें स्थूल शरीरका संबंध छूट जाता है और फोडे आदि स्थूल शरीर परही होते हैं। इसी प्रकार जब बीमार मर जाता है, तब वह सूक्ष्म शरीरमें जाकर अपने खयाली दुनियांमें रममाण होता है। इसी कारण मरण आतेही उस बीमारको बडा ही आराम मिलता है, क्यों कि सब कष्ट जो इस स्थूल शरीरके ज्वर आदिके कारण उसको भोगने पडते थे, स्थूल शरीरका संबंध छूट जानेसे, उसके सब कष्ट दूर हो जाते हैं। इस लिये मृत्युकी अवस्था कष्ट की नहीं है, बल्कि आराम की है।

कई कहते और समझते हैं कि मरणके समय बडे कष्ट होते हैं, परंतु यह बिलकुल भ्रम है। मरण उतनाही सुगम है कि जितना जागृतिसे स्वप्नमें जाना आसान है। स्वप्नमें प्राणका संबंध रहता है और मृत्युमें हट जाता है, इतनाही भेद है; परंतु इस कारण स्वप्नकी अपेक्षा मृत्युके समय अधिक कष्ट होते हैं ऐसा माननेके लिये कोई विशेष कारण नहीं है। इतनाही नहीं, बल्कि जो अपने सब शरीरोंका विज्ञान रखते हैं, उनको यह बात स्पष्ट होती है कि, मृत्यु की अवस्था बडी आरामकी होती है। जैसा स्वप्नमें मानसिक कल्पनाकी सृष्टिका अनुभव लेनेवाला मनुष्य दुनियादारीके भयानक झगडोंको भूल जाता है और अपनी कल्पनामें ही मस्त रहता है; वही बात मृत्युके समय अनुभवमें आती है। इसलिये प्रत्येक मनुष्य प्रतिदिनकी निद्राके पूर्व प्राप्त होनेवाली स्वप्नकी अवस्थाका विचार करके मृत्युके पश्चात्की अवस्थाकी कल्पना कर सकता है। इसमें कोई विशेष कठिनता नहीं है। जागृतिसे स्वप्न और सुषुप्ति प्राप्त होना कितना आसान है इसका प्रत्येक अनुभव करता है, वही अनुभव मृत्युके पश्चात् आता है।

यहां कई कहेंगे कि मृत्युके समय जो उस मरनेवालेको कष्ट होनेका अनुभव दूसरोंको दिखाई देता है, उसका कारण क्या है? वह केवल देखनेवालोंका काल्पनिक भय है। क्योंकि इस स्थूल शरीरद्वारा सुख अथवा दुःखका अनुभव करनेके सब ही साधन उसके पूर्व ही हट जाते हैं। इसलिये स्थूल शरीरके जो अंतिम प्रयत्न होते हैं, उनसे आत्माको किसी प्रकारके कष्ट नहीं होते। जब तक बीमार बोलता रहता है, और उत्तर देता है, तब तक उसको कष्टोंका अनुभव है; परंतु जिस समय अंतिम बेहोशी होती है, उस समयसे वह स्वप्नके आनंदमें पहुंच जाता है और उसको शरीरके कष्टोंका कोई पता नहीं होता। यही परमात्माकी अपार दया है कि कष्टोंके पहिले ही बेहोशी और पश्चात् स्वप्नका सुख उसने रखा है।

स्थूल शरीरका संबंध छूटनेके पूर्वही उसको स्वप्नके समान अवस्था प्राप्त होती है, और इसी अवस्थामें वह आत्मा मरनेके समय और मरनेके पश्चात्

रहता है । स्वप्नकी अवस्था मनके संस्कार और इच्छाकी प्रधानताके अनुकूल होती है । यदि कोई मनुष्य योगाभ्यासमें रुचि रखता हुआ अनुष्ठान करता रहता है, तो उसको उक्त विचारोंके ही स्वप्न आ जायंगे । कोई दूसरा मनुष्य सार्वजनिक हितके कार्य करनेमें अपने आपको लगाता है, तो उसको वैसेही स्वप्न आयंगे । जिसके जैसे मनोभाव होंगे वैसेही स्वप्न उसको आ सकेंगे । इसलिये प्रतिदिनके स्वप्नके समान ही मृत्युके समय अथवा तत्पश्चात्के स्वप्न भी उसके जीवनके विचारोंके अनुकूल ही आवेंगे । और उन विचारोंके स्वप्नोंमें ही वह मस्त रहेगा। यहां तक की उसको अपने मृत्युका भी पता नहीं होगा और अपने संबन्धियोंका भी विचार उसको नहीं आवेगा । हां यदि उसको अपने बालबच्चोंका ही केवल प्रेम होगा, तो वह उस स्वप्नमें अपने ख्याली बालबच्चोंके साथ ही खेलता और प्रेम करता रहेगा। इसी प्रकार अन्य व्यवसायी अपने व्यवसायके स्वप्नमें मस्त रहेगा । यह मरणोत्तरकी स्थिति है ।

मरणके पश्चात् दो अवस्थाएं प्राप्त होतीं हैं, एक वह स्वप्नके समान अवस्था और इसके पश्चात् सुषुप्तिके समान दूसरी अवस्था। इन अवस्थाओंका काल आयुष्यकी घटनाओंके अनुकूल छोटा अथवा बडा हो सकता है। जैसा एक छिटासा बालक यदि मर गया तो उसको थोडे समय तक ही इन अवस्थाओंमेंसे गुजरना होगा; तथा राजकीय और सामाजिक बडी बडी घटनाओंमें जो सज्जन रातदिन कार्य करता है, उसके लिये ये दोनों अवस्थाएं बडी लंबी हो सकती हैं । ये दोनों अवस्थाएं विश्रांतिकी अवस्थाएं होती हैं, इस लिये इस जन्ममें जिस प्रकारका कार्य हुआ होगा उस प्रकारकी उसको विश्रांति मिलेगी, और उस विश्रांतिके कारण द्वितीय जन्ममें द्विगुणित उत्साह प्राप्त होगा ।

जैसा शारीरिक मेहनत करनेवाला मजदूर आराममें आठ दस घंटे सो जाता है, परन्तु बैठकर काम करनेवाला बाबू बडी मुश्किलसे पांच या छः घंटे नींद पाता है, उसी प्रकार मरणके पश्चात् भी होता है । सूक्ष्म शरीरकी थकावट जिस प्रकार हुई होगी उस प्रकार उसको विश्रांतिकी आवश्यकता होगी । इसका अंदाज करनेके लिए हिसाब उलटा करना

चाहिए, अर्थात् जगत्‌में शारीरिक काम करनेवाले मजदूर पेशा आदमीसे लिखने पढनेका काम करनेवाले बाबूजीको स्थूल देहमें निद्रा कम आती है परंतु इसके उलटा मृत्युके पश्चात् होता है। विचारका कार्य करनेवालोंको मरणोत्तरकी विश्रांति अधिक होती है और शारीरिक काम करनेवालोंको कम होती है। प्रतिदिनकी निद्रासे शरीरकी थकावट दूर हो जाती है, और मृत्युके कारण अन्य सूक्ष्म देहोंकी थकावट दूर होकर उनमें फिर कार्य करनेकी शक्ति आती है। इससे पाठक जान सकते हैं कि मृत्युके कारण कितना आवश्यक कार्य हो रहा है।

स्थूल शरीरका रोगोंके कारण अथवा आयुके कारण जीर्ण होना, अपघातसे निकम्मा बनना, अथवा विचार आदिके कार्य अधिक करनेके कारण उन सूक्ष्म देहोंकी शक्ति क्षीण होनी, इत्यादि कारण हैं कि जिनसे मृत्यु होता है। योगी उन हानियोंसे अपने आपको बचाते हैं, इस लिये योगी अपनी आयु इच्छा और प्रयत्नानुसार बढा सकते हैं। स्थूल, सूक्ष्म, कारण आदि शरीरोंको क्षीण न होने देना, योगसाधनका मुख्य हेतु है। इस लिये योगसाधन अवश्यही किया जायगा तो उसी के अनुसार लाभ अवश्य होगा।

(५) धर्म और मृत्यु।

धर्मकी सहायतासे मृत्युका भय दूर हो जाता है। यह बात स्पष्ट रीतिसे जानी जा सकती है। देखिए धर्मनियमोंका मूल हेतु स्थूलदेह, सूक्ष्मदेह और कारणदेहोंको शुद्ध, पवित्र और बलिष्ठ बनाना है। प्रत्येक देहका विकास करके उसको परिपूर्ण बनाना धर्मके नियमोंका मूल उद्देश है। साधारण मनुष्योंके सूक्ष्म और कारण देह विकसित नहीं होते। मल्ल और पहलवानोंके स्थूल शरीर बडे विशाल होते हैं, परंतु योगकी दृष्टिसे उनके भी शरीर निर्दोष नहीं होते, यही कारण है कि कोई पहलवान दो तीन सौ वर्ष जीवित नहीं रहता; प्रत्युत साधारण मनुष्योंसे भी न्यून आयुमें कदाचित् इनकी मृत्यु होती है। निर्दोष शरीर होनेका परिणाम अतिदीर्घ आयु है। शरीरका बल, आरोग्य और दीर्घ आयु ये तीन पर-

स्वर भिन्न धर्म हैं, कदाचित् इनका परस्पर संबंधभी बताया जा सकेगा; परंतु सूक्ष्म दृष्टिसे इस भेदका अनुभव कीजिए। शरीर निर्दोष होनेसे आरोग्य और दीर्घ आयु अवश्य प्राप्त हो सकती है, बल अन्य कारणोंपर निर्भर है। पहलवान बल संपादन करते हैं परंतु साथ साथ शरीरको निर्दोष न रखनेके कारण आरोग्य और दीर्घ आयु उनको नहीं मिलती। यह बात एक देहके विषयमें हो गई। साधारण मनुष्योंमें शारीरिक बलको धारण करनेवाले बहुत मिल सकते हैं। परंतु सूक्ष्म और कारण देहोंका बल प्राप्त करनेवाले क्वचित् किसी स्थानपर होंगे।

सूक्ष्म देहके विकासके साथ प्रबल इच्छा शक्ति होती है। अपने देहमें तथा अन्योंके देहोंमें अभीष्ट स्थिति केवल इच्छा शक्तिसे उत्पन्न करनेकी सिद्धि जिनको होती है 'ऐसे सज्जनोंका सूक्ष्म देह विकसित हुआ है,' ऐसा समझिये। बडे बडे प्रबंधके कार्य करनेवाले, उद्यमी साहसी, उत्तम वक्ता, सेनानी, राष्ट्रके नेता, उदारबुद्धि पुरुष, जिनके पीछे सहस्रों मनुष्य चलते हैं, उनकी इच्छा शक्तिकी प्रबलता विलक्षण होती है, इसमें किसीको संदेह नहीं हो सकता। साधारण जनोंसे ये नर विशेष शक्तिशाली होते हैं इसका उक्त हेतु है। कारण देहका विकास इससे कठिन है। साधु, सत्पुरुष, संत, मुनि, ऋषि, महंत आदि जो धार्मिक क्षेत्रमें बडे निश्रेयस संपन्न महान् आत्मा होते हैं, उनका कारण शरीर बडा विकसित हुआ होता है। इनसे सुविचारका स्रोत जनतामें फैलता है। इस प्रकार इन शरीरोंका विकास होनेसे किस शक्तिका प्रादुर्भाव होता है, इसका संक्षेपसे वर्णन यहां हुआ, क्योंकि विस्तारपूर्वक वर्णन करनेके लिये यहां स्थान नहीं है।

इन शरीरोंको निर्दोष और बलवान् बनाना धर्मके नियमोंका मुख्य उद्देश है। मतमतांतर और धर्ममें यही भेद है। मतमतांतरवाले अपने अपने मतकी स्थापना और प्रगति करनेके लिये विशेष ढोंगकी रचना करते हैं। धर्मके नियमोंमें वैसी बात नहीं होती। धर्म मनुष्यकी अभ्युदय और निश्रेयसकी सिद्धि करना चाहता है, परंतु मतमतांतर अपने अपने जथ्थे बनाने चाहते हैं। इस प्रकार धर्मके नियम सर्वसाधारण मानवी उन्नतिके लिये

होते हैं, और यह उन्नति उक्त देहोंके विकासके साथ संबंध रखती है। मानवी धर्मके नियमोंका जो पालन करते हैं, उनकी इस प्रकार उन्नति होती है।

इसलिये सच्चा धार्मिक मनुष्य मृत्युसे घबराता नहीं, क्योंकि मृत्युकी व्यवस्थाका उसको ठीक ठीक पता होता है। उक्त तीन देह एकके अंदर दूसरा और दूसरेके अंदर तीसरा, ऐसे रहते हैं। और प्रत्येक देहके रंग रूप आकार उस मनुष्यकी आध्यात्मिक उन्नतिके अनुकूल होते हैं। सात्विक मनुष्यका शुभ्रवर्ण, राजसिक मनुष्यका पीत अथवा रक्तवर्ण तथा तामसिक मनुष्यका नील अथवा कृष्णवर्ण प्रसिद्ध ही है। धार्मिक मनुष्य इन देहोंकी व्यवस्थाको जानता है, इस लिये मृत्युको वह ऐसाही समझता है कि जैसा "पुराने कपडे उतारकर नये पहिनना" होता है। मनुष्य अपने शरीरपर कुरता, अंगरखा और दुशाला पहिनता है। दुशाला फटनेपर उसको उतार देगा और दूसरा नया पहिनेगा। इसी प्रकार जीवात्मा कारण शरीरका कुरता, सूक्ष्म शरीरका अंगरखा; और स्थूल शरीरका दुशाला पहनता है। जिस समय वह फट जाता है उस समय इसको उतारकर दूसरा पेहननेकी तैयारी करता है, यही मृत्यु है। इसीलिये यह आवश्यक भी है। श्रीमद्भगवद्गीतामें महात्मा श्रीकृष्णचन्द्रजीने भी कहा है

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि संयाति नवानि देही।

गी. अ. २।२२

अथवा यों समझिये कि घरके बाहर शहरमें जानेके लिये अनेक कपडे पहिने जाते हैं और घरपर आकर उतारे जाते हैं। इसी प्रकार जीवात्मा अपने घरसे जब जगतमें आने लगता है तब वह उक्त वस्त्र पहिनता है; परंतु जब वह अपने घर वापस जाता है, तब कपडोंको उतारता है। यह कपडोंको उतारनाही मृत्यु है, परन्तु इस मृत्युके कारण जीवात्माको वह आनंद और आराम मिलता है, कि जो घरमें आनेसे एक उत्तम गृहस्थीको मिलता है; वास्तविक रीतिसे इससे भी अधिक आराम उसमें है।

इस आरामका अल्प अंश प्रतिदिन निद्रामें हरएक प्राणीको मिलता है। यही आनंद विशेष दीर्घकालपर्यंत मृत्युके पश्चात् प्राप्त होता है। यही आनंद समाधिद्वारा शुद्ध ज्ञानपूर्ण होनेके कारण सात्विक आनंदके रूपमें योगीको मिलता है और उसी समाधिके आनंदका विस्तार मुक्तिमें है।

निद्रा, मृत्यु, समाधि, मुक्ति आदिमें तम और सत्वका जो भेद है वह पाठक विचारसे जान सकते हैं। जब उनके मनमें उक्त कल्पना ठीक प्रकार आजायगी तब उनको मृत्युको ठीक कल्पना हो सकती है।

(६) इच्छा मरणकी सिद्धि।

योगद्वारा इच्छा मरणकी सिद्धि प्राप्त हो सकती है। योगी अपनी इच्छासे जिस समय चाहे मर सकता है। रोग आदिकोंसे मरना साधारण मनुष्योंके लिये है। पूर्ण दीर्घ आयुका उपभोग कर अपना इस लोकका धार्मिक कार्य समाप्त करके, अपनी इच्छासे प्राणोंका निरोध करके मरना इच्छा मरण कहलाता है। प्राणायामकी सिद्धि होनेके पश्चात् यह अधिकार प्राप्त हो सकता है।

स्थूल शरीरके साथ सूक्ष्म देहका प्राणसंबंध है। प्राणायामसे यह संबंध बलिष्ठ होता है, इसलिये योग्य रीतिसे प्राणायामकी सिद्धि प्राप्त करनेवाला अकाल मृत्युसे मरेगा नहीं, तथा अपनी इच्छासे इस संबंधको जब चाहे तोड़ भी सकता है; इसलिये उसको इच्छामरण साध्य हो सकता है।

यदि ऐसा है, तो हरएक इच्छामरणी क्यों नहीं होता? ऐसा प्रश्न यहां कई सज्जन कर सकते हैं। उत्तरमें निवेदन है कि इस प्रकारकी सिद्धि होनेके लिये पहिली आवश्यकता मातापिताके शुद्ध रजवीर्यसे उत्पत्तिकी है। घरके और परिवारके लोग धार्मिक और योगसाधन करनेवाले हों तो बड़ाही अच्छा है। देश दुर्भिक्षसे रहित और नीरोग होना चाहिये, समाज निरुपद्रवी चाहिये। आठ वर्षकी आयुसे प्राणायामका अभ्यास विधिपूर्वक होना चाहिये। उसकी परिस्थिति ऐसी होनी चाहिये कि चिंता, ईर्ष्या, द्वेष आदि उसके पास न आसके। तथा अन्य प्रकारसे सब धार्मिक

और यौगिक वायुमंडलमें उसका प्राथमिक आयु व्यतीत होना चाहिये। तब कहीं उसको प्राण वश हो सकता है। और प्राण वश होनेसे उक्त सिद्धि हो सकती है। साधारणतः विलक्षण इच्छा शक्तिके प्रभावसे भी कुछ दिनतक अथवा मृत्यु दूर किया जासकता है, अथवा पास भी लाया जासकता है। तात्पर्य इच्छामरणकी सिद्धि काल्पनिक नहीं है। विचारी पाठक अपनी कल्पनासे उसका थोडासा अनुभव भी कर सकते हैं।

जब ग्राममें हैजे आदिकी बीमारी फैलती है, तब मनके दुर्बल मनुष्य समझने लगते हैं कि, "शायद यह हैजा मुझे होगा और मैं मर जाऊंगा।" निरंतर ऐसे क्षुद्र विचार मनमें रहनेके कारण इच्छाशक्ति कमजोर होती है और उससे उनका शरीर बीमारी बढनेके लिये अनुकूल बन जाता है। अंतमें वह उस बीमारीसे मर जाता है। पाठक विचार करेंगे तो यह भी इच्छामरण ही है, परंतु इसमें मृत्युको पास बुलाया गया है। यही शक्ति विरुद्ध रूपसे काममें लायी जायगी, तो मृत्यु दूर भी हो सकता है। "मैं परमेश्वरका भक्त हूं, इस लिये मैं अकालमें नहीं मर सकता" इस विचारको प्रभुकी भक्तिके साथ मनमें परिपुष्ट करनेसे इच्छाशक्ति बलवान होती है और उसके कारण शरीर भी रोगोंका निवारण करनेके योग्य हो जाता है। इस प्रकार भी मृत्यु दूर होता है।

इस विषयमें इतनी बात स्मरण रखनी चाहिए कि केवल इतनेसेही संपूर्ण कार्यभाग नहीं होगा, जो वस्तुतसे इसके नियम हैं, उनका क्रमशः विचार योगविषयक निबंधोंमें होगा। यहां संक्षेपसे सूचना मात्र लिखा है। जो लोग उत्तर आयुमें प्राणायामादि प्रयत्न करेंगे उनको कुछ न कुछ लाभ होगा ही; परंतु प्रथम आयुसे योग्य प्रयत्न करनेवालेके समान उनको लाभ नहीं हो सकता। तथापि हरएकको हरएक उमरमें योग्य रीतिसे अवश्यही प्रयत्न करना चाहिए। क्यों कि प्रयत्न करनेसे कुछ न कुछ योगका बल प्राप्त होता ही है।

(७) अमरत्वकी प्राप्ति।

अमरत्वकी प्राप्ति होती है, ऐसा निश्चयसे उपदेश करनेवाले मंत्र वेदमें अनेक हैं। यदि योग आदि साधनोंसे मृत्यु हट जाता है, तो ऋषिमुनि-

योंका मृत्यु क्यों हुआ ? ऐसा प्रश्न यहां उपस्थित हो सकता है। उसके उत्तरमें निवेदन है कि मृत्यु जो होता है, वह स्थूल शरीरका होता है। कारण शरीरका मृत्यु नहीं होता। कारण शरीरमें आत्मा रहता है। यदि योगके ध्यान धारणादि साधनोंसे यह अनुभव मनुष्यको हो जायगा, कि मैं कारण शरीरका निवासी हूं, और मैं स्थूल शरीरको साधन रूपसे बरतता हूं तथा कारण शरीर सदा रहता है और स्थूल शरीर बनता और बिगडता है; तो उसको अनुभव आ जायगा, कि जो मृत्यु आता है, वह मेरे साधनको छिन्नभिन्न करता है और साधनके नष्ट होनेपर भी मैं पूर्ववत् ही रहता हूं तथा स्थूल शरीरके मृत्युके कारण मुझमें कोई परिवर्तन नहीं होता। इस ज्ञान और अनुभवके पश्चात् उसको अमरपनका ही सदा अनुभव रहेगा, और अपने शरीरका नाश देखता हुआ भी वह अपने अमरत्वमें मस्त रहेगा।

उदाहरणकेलिये हम अपने मकानका विचार करेंगे। मकान टूट जानेपर भी घरका स्वामी अपने आपको वैसाही अमर समझता है कि जैसे पहिले समझता था। घरके टूटनेसे कोई भी मनुष्य अपने आपको खंडित नहीं समझता, इसका हेतु यही है कि वह अपने आपको घरसे पूर्णतया भिन्न समझता है। जो योगी इस प्रकार अपने आपको इस स्थूल शरीरसे भिन्न समझेगा, उसको इस देहके मृत्युके साथ अपने मर जानेकी कल्पना भी नहीं होगी। क्योंकि वह अपने आपको देहसे भिन्न ही मानता है।

अपने आपको देहसे भिन्न अनुभव करनेकी सुगम रीति यह है कि प्रतिदिन निद्रा आनेके समयकी अवस्थाका विचार करना। उस सूक्ष्म समयमें जो अनुभव होता है उसकी कल्पना होनेसे "मैं इस स्थूल शरीरसे भिन्न हूं" इसका अनुभव हो सकता है। पाठक इस प्रकार अपने भिन्नत्वका अनुभव ले सकते हैं। योगसे जो प्रत्यक्षता है वह कष्टसाध्य है, परंतु यह उपाय अत्यंत सुगम है और हरएक कर सकता है।

इस प्रकार अपने आपको स्थूल शरीरसे अलग अनुभव करने पर, स्थूल शरीर टूटनेकी अवस्थामें भी वह अपने आपको वैसाही परिपूर्ण

अनुभव करेगा। और दूसरा स्थूल शरीर मिलने पर भी उसको साधन-रूप मानकर स्वयं अपने आपको अलग मानेगा। यही अमरत्व है। और धर्मके विविध साधनोंसे यही अनुभव प्राप्त करना है। आशा है कि पाठक इस अनुभवको प्राप्त करनेके प्रयत्नमें अपनी पराकाष्ठा करेंगे।

मृत्युके विषयमें सामान्य विवरण इस प्रकार हो गया है। अब वेदमें मृत्युके विषयमें जो उपदेश आगये हैं उनका सारांश रूपसे विचार करना है—

मृत्युके विषयमें वेदका उपदेश।

वेदमें मृत्युके विषयमें अनेक प्रकारके उपदेश हैं। उन सबका विचार करना बडेही प्रयासका कार्य है। यहां सारांशरूपसे और संक्षेपसे उसका विचार करना है।

(१) यमदूत और मृत्युपाश।

वेदमें यमदूतों और मृत्युके पाशोंका वर्णन निम्न प्रकार आगया है।

मृत्यवेऽमून् प्रयच्छामि मृत्युपाशैरमी सिताः।
मृत्योर्ये अघला दूतास्तेभ्य एनान् प्रतिनयामि बद्ध्वा ॥ १०॥
नयताऽमून् मृत्युदूता यमदूता अपोम्भत ॥
परः सहस्रा हन्यन्तां तृणेढ्वेनान् मत्यं भवस्य ॥ ११ ॥

अथर्व. ८।८

"मैं इन शत्रुओंको मृत्युकेपास भेजता हूं। ये मृत्युके पाशोंसे बंधे हैं। इनको बांधकर मृत्युके निकृष्ट दूतोंके पास मैं ले जाता हूँ॥ हे मृत्युके दूतो! हे यमके दूतो! इनको बांधो और ले जाओ! शत्रुके हजारों मर जांय। (भवस्य) सबके उत्पन्न कर्ता ईश्वरके शस्त्र इनको काटें॥"

शत्रुओंके विषयमें वीर पुरुषोंके भाव इन मंत्रोंमें व्यक्त हुए हैं। वीर पुरुष यमदूतों, यमपाशों और मृत्युदूतोंसे नहीं डरते हैं, प्रत्युत अपने शत्रुओंको मृत्युके पाशोंसे बांधकर मृत्युके पास पहुंचाते हैं। स्वयं मृत्यु-

पाशोंसे न डरना परंतु शत्रुओंको मृत्युके हवाले करनेका शौर्य बताना, ये भाव इन मंत्रोंमें हैं। तथा और भी देखिये—

इम उप्ता मृत्युपाशा यानाक्रम्य न मुच्यसे ॥
अमुष्या हंतु सेनाया इदं कूटं सहस्रशः ॥

अ. ८।८।१६

"ये फैले हुये मृत्युपाश हैं, इनका आक्रमण होनेपर तुम छूट नहीं सकते। इस (कूटं) कूट युद्धसे इस शत्रुकी सेनाके हजारों आदमी मर जायँ।"

इस मंत्रमें, स्वकीय वीर ही मृत्युके फैले हुए पाश हैं, जिनका आक्रमण होनेपर शत्रुके सैनिक बच नहीं सकते, यह भाव स्पष्ट है। शूर पुरुषोंका सैन्य सचमुच दुष्ट शत्रुओंके लिये मृत्युके फैले हुए पाशोंके समानही होता है। यमका अर्थ राष्ट्रका नियमन करनेवाला राजा और उसके दूत राष्ट्र संरक्षक शूर सैनिक यह तात्पर्य उक्त मंत्रोंसे निकलता है। इनके अतिरिक्त भी मृत्युके पाश हैं उनको निम्न मंत्रमें देखिए—

अग्निर्मा गोप्ता परिपातु विश्वतः उद्यन्त्सूर्यो नु-
दतां मृत्युपाशान् ॥ व्युच्छंतीरुषसः पर्वता ध्रुवा
सहस्रं प्राणा मय्या यतंताम् ॥

अ० १७।१।३०

"अग्नि सब प्रकारसे मेरा रक्षण करे, उदय होनेवाला सूर्य मृत्युके सब पाशोंको दूर करे, उषःकाल और स्थिर पर्वत सहस्रों प्रकारसे मेरे अंदर प्राणोंका संवर्धन करें।"

इस मंत्रमें वैयक्तिक मृत्युपाशोंका वर्णन है। हवनका अग्नि, दिनभर प्रकाश करनेवाला सूर्य, उषःकालका और पहाडोंका शुद्ध वायु प्राणकी स्थापना द्वारा मृत्युके पाशोंको दूर करते हैं; यह मंत्र आयुष्यवर्धनकी युक्ति बता रहा है, इसलिये पाठक इसका विशेष विचार करें। हवनके अग्निद्वारा आयुष्यका संवर्धन होता है, इसका वर्णन "हवनचिकित्सा" के प्रसंगमें हुआ है। सूर्य अपने किरणोंद्वारा रोगबीजोंको दूर करता है यह बात "सौरचिकित्सा" के वर्णनमें बताई है। उषःकालकी शुद्ध

हवा और पहाडोंका पवित्र वायु आरोग्यवर्धक है, इस विषयमें सब जानते ही हैं। इनके द्वारा मृत्युके पाश दूर किये जा सकते हैं और मनुष्य दीर्घजीवी बन सकता है। इसलिये (१) हवन, (२) सूर्य-प्रकाशका सेवन, (३) उषःकालमें हवा खोरी और (४) पहाडोंकी सैर इन चार बातोंको करके पाठक मृत्युके पाश तोड सकते हैं। तथा।—

जीवतां ज्योतिरभ्येह्यर्वाङा त्वा हरामि शतशारदाय ॥
अव मुंचन् मृत्युपाशानशस्तिं द्राघीय आयुः प्रतरं ते दधामि ॥
अ. ८।२।२

"(जीवतां ज्योतिः) जीवित लोगोंके तेजके पास आओ। तुमको सौ वर्षके दीर्घ आयुतक चलाता हूं। मृत्युके पाशोंको तथा (अशस्ति) अप्रशस्तताको दूर करके तेरे लिये दीर्घ आयु अर्पण करता हूं।"

जीवित और जागृत लोगोंके तेजके पास रहना चाहिये। और अप्रशस्त अर्थात् निंदनीय भावोंको दूर करना चाहिये। ये दो उपाय हैं कि जिससे दीर्घ जीवन प्राप्त हो सकता है। जीवित मनुष्योंके तेजके साथ रहना चाहिये। एक जीवित मनुष्य होते हैं और दूसरे मुर्दा लोग होते हैं। उत्साही पौरुषका जीवन व्यतीत करनेवाले लोग जीवित मनुष्य कहलाते हैं। इनके तेजके साथ रहनेसे अपने अंदर भी उत्साह आजाता है। और उत्साहही जीवनका स्रोत है। दूसरी बात निंदनीय हीन भावोंको दूर करना है। हीन भावोंको धारण करनेसे मन दूषित होता है और मनके दोषसे आयु अल्प होती है। तथा अन्य प्रकारके जो मृत्युके पाश होंगे, उनको भी दूर करना चाहिए। और दीर्घ आयु प्राप्त करना चाहिये। जो मनुष्य समझते हैं कि आयु निश्चित होती है उनको इस मंत्रका विचार करना चाहिये। मृत्युके पाशोंकी कल्पना निम्न मंत्रोंसे आ सकती है। देखिये—

ऋणोमि ते प्राणापानौ जरां मृत्युं दीर्घमायुः स्वस्ति ॥
वैवस्वतेन प्रहितान् यमदूतांश्चरतोऽपसेधामि सर्वान् ॥ ११ ॥
आरादरातिं निर्ऋतिं परो ग्राहिं क्रव्यादः पिशाचान् ॥
रक्षो यत्सर्वं दुर्भूतं तत्तम इवाप हन्मि ॥ १२ ॥
अ. ८।२

"तेरे लिये मैं प्राण और अपान, (जरां मृत्युं) वृद्धावस्थाके पश्चात् मृत्यु, दीर्घ आयुष्य, (स्वस्ति) आरोग्य देता हूं। वैवस्वत यमसे भेजे हुए यमदूतोंको मैं दूर करता हूं॥ (अरातिं) ईर्ष्या, द्वेष, द्रोह, (निर्ऋतिं) रीति और विधिके विरुद्ध आचरण, (ग्राहिं) बडी देर तक चलनेवाली बीमारी, (क्रव्यादः) मांसको क्षीण करनेवाले रोग, (पिशाचान्) रक्तदोष करनेवाले रोगबीज, (रक्षः-क्षरः) क्षय उत्पन्न करनेवाले रोगबीज, (दुर्भूतं) बुरी रीतिसे रहनेका अभ्यास, आदि जो कुछ है उसको मैं दूर करता हूं जैसे प्रकाश अंधेरेको दूर करता है।"

ये ही यमदूत हैं। इनमें कई अपने ही बुरे व्यवहारसे उत्पन्न हुये हैं, अन्य दोष अन्य प्रकारसे उत्पन्न होते हैं। इनमें "रक्षः, पिशाचः" वगैरे जो रोग बीज हैं उनको अग्नि, सूर्य, आदि नाश करते हैं, ऐसा वेदमंत्रोंमें अन्यत्र कहा है। जो मनुष्य दीर्घ आयु और आरोग्य प्राप्त करना चाहते हैं, उनको उचित है कि वे इन बुराइयोंको प्रथम दूर करें। यमदूत और यमपाश दूर किये जा सकते हैं, क्योंकि उक्त मंत्रमें कहा है कि।—

सर्वान् यमदूतान् अप सेधामि।

"सब यमदूतोंको मैं ढूंढ ढूँढ कर निकाल देता हूं।" पुरुषार्थी मनुष्य उनको योगादि साधनोंसे दूर कर सकता है और प्रयत्नसे आरोग्य और दीर्घजीवन प्राप्त कर सकता है।

इस प्रकार यह मृत्युपाशोंका स्वरूप है और ये यमदूत हैं। इनको दूर करनेके लिये धार्मिक आचरण और योगसाधन ये उपाय हैं।

(२) मृत्युकी सत्ता।

मृत्यु क्या है और वह रहता कहां है, इसका थोडासा विचार करना चाहिए। पूर्वमंत्रमें "वैवस्वत यम" शब्द है। विवस्वान् सूर्य होता है, उससे उत्पन्न हुआ यम है। यह "यम" शब्द कालवाचक है। सूर्य और काल ये आयुको प्रतिसमय क्षीण करते हैं, परंतु सूर्य प्रकाशके

सेवनसे आयुष्यकी वृद्धि होती है। इसप्रकार यह अन्योन्याश्रय है। काल अथवा समय ही यम है, तथा—

> यत्ते यमं वैवस्वतं मनो जगाम दूरकं ॥ तत्त आव-
> र्तयामसीह क्षयाय जीवसे ॥ १ ॥
>
> ऋ. १०।५८

"जो तेरा वैवस्वत यम मन दूर दूर भटकता है, उसको वापस लाकर तेरा दीर्घ आयु बनाता हूं।"

इस मंत्रमें मन ही वैवस्वत यम है, ऐसा स्पष्ट कहा है। अपने शरीरमें जो मन है वही वैवस्वत यम है। यही मन मनुष्यको मारक और तारक भी होता है। मन ही बंध और मोक्षका कारण है। यह मन हमारे शरीरमें यम है, बाह्य जगतमें काल अथवा समय यम है। अपने मनके विचारोंका निरीक्षण करनेसे हम ही अपने लिये कैसे मृत्युके पाश और जाल फैलाते हैं, इसका विचार स्पष्ट हो सकता है। कालका विचार छोड दें, परंतु कमसे कम हमारे मनके कारण तो हमारा मृत्यु पास नहीं आना चाहिए। इसलिये पाठको अपने मनमें पूर्णताके आरोग्यमय सुविचार धारण कीजिए और अपने मृत्युको दूर कीजिए। तथा—

> य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिषं यस्य देवाः ॥
> यस्य छायाऽमृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥
>
> ऋ. १०।१२१।२; य. २५।१३

"जो आत्मिक सामर्थ्य और शारीरिक बल देनेवाला है, जिसकी सब देव उपासना करते हैं, जिसकी शीतल छाया ही अमृत है और जिससे दूर होना ही मृत्यु है, उस सुखपूर्ण देवकी अर्पणद्वारा पूजा करते हैं।"

यह मंत्र परमात्मा, जीवात्मा और मनके प्रभावका वर्णन कर रहा है। परमात्मपक्षमें "देवाः" शब्दका अर्थ अग्नि सूर्य आदि है। और जीवात्मा तथा मनके पक्षमें "देवाः" शब्द इंद्रिय वाचक है। मनके पक्षमें इसका अर्थ निम्न प्रकार हो सकता है—"जो आत्मिक और शारीरिक बल बढाता है जिसकी उपासना सब इंद्रियां करती हैं, जिसके

पास अमृत है और जिससे वियोग ही मृत्यु है उस आनंदवर्धक दिव्य मनकी त्याग द्वारा पूजा करेंगे।" मनके सुविचारोंके कारण मनुष्यका बल बढता है और हीन विचारोंके कारण क्षीणता आती है, इस अनुभवको मनमें धारण करके उक्त अर्थ देखना चाहिए। इस अर्थको लेकेसे अपने मनके सामर्थ्यकी कल्पना हो सकती है। तथा इसका परमात्मापर अर्थ देखनेसे विदित हो सकता है कि, परमात्मभक्तिसे अमरत्वकी प्राप्ति और परमात्मासे विमुख होनेसे मृत्यु होता है। इस लिये जो पाठक मृत्युको दूर करना चाहते हैं, वे ईश्वरभक्ति अवश्य किया करें, क्यों कि उससे बल बढ जाता है। इस ईश्वरभक्तिसे मृत्युका भय दूर हो जाता है, देखिए—

वेदाऽहमेतं पुरुषं महांतमादित्यवर्णं तमसः परस्तात्॥
तमेव विदित्वाऽति मृत्युमेति नान्यः पंथा विद्यतेऽयनाय॥

य. ३१।१८

"जो अंधकारसे परे, सूर्यके समान तेजस्वी और महान पुरुष है उसको मैं जानता हूं। उसको जाननेसे ही मृत्युके पार हो सकता है। मृत्यु दूर करनेका दूसरा कोई उपाय नहीं है।"

मृत्यु दूर करनेका सामर्थ्य परमेश्वरकी भक्तिमें है। परमेश्वरकी भक्तिसे आत्माका सामर्थ्य बढता है, आत्मिक बलसे मनकी शक्ति विस्तृत होती है, और मनकी शक्ति विस्तृत होनेसे मृत्युका भय निवृत्त होता है, इसका स्पष्टीकरण पूर्वभागमें दिया ही है। इस प्रकार मृत्युकी सत्ता आत्मिक बलके अभावमें है। इस लिये मृत्युको दूर करनेवालोंको उचित है कि वे अपने अंदर आत्मिक बल बढावें और मृत्युका भय दूर करें।

(३) मृत्युको हटानेकी विधि।

अब मृत्यु दूर करनेके उपायका विचार करना है। निम्न मंत्रमें मृत्युको हटानेकी विधि देखने योग्य है—

ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमुपाघ्नत ॥
इंद्रो ह ब्रह्मचर्येण देवेभ्यः स्वराभरत् ॥
अ. ११।७।१९

"ब्रह्मचर्यके तपसे देव मृत्युको हटाते हैं। इंद्र निश्चयसे ब्रह्मचर्य द्वारा ही देवोंका तेज बढाता है।"

'ब्रह्मचर्य' शब्दके अनेक अर्थ हैं, (१) ब्रह्म अर्थात् महान होनेके लिये योग्य आचरण करना, (२) ईश्वरके साथ रहना, आस्तिक्य धारण करना, (३) ज्ञानके अनुकूल व्यवहार करना, (४) सत्य निष्ठ होना, (५) आत्माके साथ रहना, (६) वीर्य रक्षण और सुनियमोंके अनुकूल आचरण करना। इत्यादि नियमोंके द्वारा देव अर्थात् ज्ञानी विद्वान और इंद्रियां मृत्युको जीतती हैं। और इंद्र अर्थात् आत्मा इंद्रियोंके अंदर तेजकी स्थापना करता है। मृत्युको हटानेका यह उपाय है। एक ब्रह्मचर्य शब्दके अंदर सब ही शुभ नियमोंका अंतर्भाव हो जाता है। इस प्रकारके शुभ नियमोंके अनुकूल जो अपना चाल चलन रखता है वही निम्न फल प्राप्त कर सकता है—

यदि क्षितायुर्यदि वा परेतो यदि मृत्योरंतिकं नीत एव ॥
तमा हरामि निर्ऋतेरुपस्थादस्पार्शमेनं शतशारदाय ॥
अ.३।११।२

"यद्यपि इसकी आयु क्षीण हुई हो, यदि यह प्रायः मर चुका हो, यदि यह मृत्युके पास गया हो, तो भी इसको उस विनाशके समीपसे मैं वापस लाता हूं और सौ वर्षके जीवनके लिये (अस्पार्शं) बलवान करता हूं।"

यह आत्मिकशक्तिका प्रभाव है, जिसके अंदर आत्मिक शक्तिका परिपूर्ण विकास होगया होगा, वही इसप्रकार रोगीको दीर्घजीवनके लिये बलवान बना सकता है। हवनचिकित्साके सूक्तमें यह मंत्र है। यज्ञ द्वारा इसप्रकार बीमारको फिर नवजीवन दिया जा सकता है। तथा—

मृत्योरहं ब्रह्मचारी यदस्मि निर्याचन् भूतात्पुरुषं यमाय ॥
तमहं ब्रह्मणा तपसा श्रमेणानयैनं मेखलया सिनामि ॥
अ. ६।१३३।३

"मैं अपमृत्युका ब्रह्मचारी हूं। सब जीवलोकसे यमके लिये समर्पित होनेवालेको चाहता हूं। इसलिये मैं ज्ञान, तप, परिश्रम आदिसे तथा इस मेखलासे उसको बांधता हूं।"

जो बडे लोग होते हैं अपने आपको मृत्युके मुखमें रख देते हैं। सब जनता की भलाईका साधन करनेके लिये वे अपना कदम मृत्युके जबडेमें धर देते हैं। इतना धैर्य और इतनी उदारता धारण करनेके पश्चात् उनके मनमें मृत्युका भय नहीं रह सकता। वे सब प्रकारसे निडर होकर अपना लोक कल्याणका पवित्र कार्य करते रहते हैं। इसप्रकार निडर होकर जो लोग पवित्र कार्यमें आत्मार्पण करते हैं वे अपने ज्ञान, तप, परिश्रम, पुरुषार्थ तथा मेखला आदि कमरबंधोंसे उसको ही बांधते हैं और उसको अपने ही आधीन कर लेते हैं। अर्थात् अन्य जन मृत्युके आधीन रहते हैं, परंतु ये सत्पुरुष मृत्युको अपने आधीन करते हैं। तात्पर्य यदि आप डर जायंगे तो मृत्यु आपको खा जायगा और यदि निडर बनेंगे, तो मृत्यु आपके आधीन रहेगा। इसलिये धैर्यके साथ प्रशस्ततम कर्म करनेमें अपने आपको समर्पित करना चाहिये और इस अर्पणसे मृत्युको वश करना चाहिये। तथा—

आयुष्मतामायुष्कृतां जीवायुष्मान् जीव मा मृथाः।
प्राणेनात्मन्वतां जीव मा मृत्योरुदगा वशम्॥

अ. १९।२७।८

"दीर्घ आयु प्राप्त करनेवालोंके समान अधिक आयु प्राप्त करके जीओ। दीर्घ आयु धारण करके जीओ, मत मरो। आत्मिक बल धारण करनेवालोंके समान प्राणशक्तिके साथ जीओ। (मृत्यो) मृत्युके (वशं) वशमें (मा उत् अगात्) मत जाओ।"

दीर्घ आयु प्राप्त करनेवाले पुरुषार्थी और आत्मिक बल धारण करनेवाले अध्यात्मनिष्ठ सत्पुरुष जिस प्रकार पुरुषार्थ करके अपना जीवन अतिदीर्घ बनाते हैं, उस प्रकार हरएक मनुष्यको अपनी दीर्घ आयु बनानी चाहिये। कभी मृत्युके वशमें नहीं जाना चाहिये, परंतु अपनी इच्छाके आधीन ही मृत्युको रखना चाहिये। तात्पर्य वेदके मतसे

करने न मरनेका प्रश्न पराधीन नहीं है, परंतु अपने आधीन है। जो नियमानुकूल पूर्ण रीतिसे वर्ताव करेंगे वे इच्छानुकूल मरण प्राप्त कर सकते हैं। इस विषयमें अथर्ववेद स्पष्ट ही है। पाठक इस मंत्रके स्पष्ट आदेशका विचार करें।

मा मृत्योः उदगाद् वशं ॥ [मृत्युके आधीन मत् होओ।]

Submit not to the power of Death.

यह आज्ञा अत्यंत स्पष्ट है, और यह बताती है कि यदि मनुष्य [illegible] रीतिसे यत्न करेगा, तो मृत्युसे हट सकेगा। तथा और देखिये—

[illegible] निर्ऋत्या अभिद्रुहस्पाद्रुहो [illegible] ॥
मृत्योरंहसो वधात्त्वं पासि [illegible] ॥

ऋ. [illegible]

"मोघ, नियमविरुद्ध आचरण, दुराचार, भय, मृत्यु, और वध इनसे तेरा संरक्षण वरुण कर सकता है।"

इस मंत्रके विषयमें विस्तार पूर्वक अन्यत्र लिखेंगे, यहां इतना ही बताना है कि दुराचारसे मृत्यु बुलाया जाता है। और देखिये—

[illegible] पुरुष माव पत्था मृत्योः [illegible] ॥
मा च्छित्था अस्माल्लोकादग्नेः सूर्यस्य संदृशः ॥

अ. ८।१।४

"हे पुरुष (अतः उत्क्राम) इस अवस्थासे ऊपर उठो, (मा अवपत्थाः) मत् गिरजाओ। मृत्युके (पड्वीशं) बंधनसे छूट जाओ। इस लोकसे, अग्नि और सूर्यके तेजसे मत् दूर होओ।"

इस मंत्रमें भी उक्त प्रकार ही उपदेश है, इतना स्पष्ट उपदेश होनेपर भी कई लोक कहते ही हैं कि आयुमें घट बध नहीं हो सकती, यह कितना आश्चर्य है? देखिये वेद कहता है कि—

पुरुष, अतः उत्क्राम। मा अव पत्थाः।
मृत्योः पड्वीशं अव मुंचमानः ॥

O man! rise up from this place! sink not downward, casting away the bonds of Death that hold thee.

हे मनुष्य! उन्नत होओ, मत गिरो, मृत्युके पाशोंको तोड दो। इसना स्पष्ट उपदेश है। इस प्रकारका बल जिस मनमें होगा, वह मन निश्चयसे मृत्युको हटा सकता है। हे वैदिक धर्मके सज्जनो! मनमें यह बल धारण करो, अपने आपको हीन और दीन न समझो। तुम्हारे अंदर मृत्युके पाशोंको तोडनेकी शक्ति है, उसका उपयोग करो और सब प्रकारका अभ्युदय और निःश्रेयस् प्राप्त करो। तथा और देखो—

> उद्वेहि मृत्योर्गभीरात् कृष्णाच्चित्तमसस्परि ॥ ११ ॥
> सूर्यस्त्वाधिपतिर्मृत्योरुदायच्छतु रश्मिभिः ॥ १२ ॥
>
> अ. ५।३०

"जिस प्रकार अंधेरा छोड कर ऊपर प्रकाशमें आते हैं, उस प्रकार (गंभीरात्) गहन मृत्युसे (उद्वेहि) ऊपर उठो॥ अधिपति सूर्य अपने किरणोंसे तुझको मृत्युसे बचावे।"

मृत्युका स्थान नीच अवस्थामें है। वहांसे उन्नत होनेपर उच्च अवस्थामें अमरत्व है। सूर्य किरणोंकी सहायतासे मृत्युका भय दूर हो सकता है। सूर्य किरणोंका उपयोग और प्रयोग करके मृत्युको हटानेकी विधि वैद्य लोग प्रकाशित करें। वेदमें अनेक स्थानपर सूर्य किरणोंका संबंध दीर्घ आयु, आरोग्य और मृत्यु हटानेके साथ जोडा है। साधारणतः अपने रहने सहनेके स्थानमें विपुल सूर्य प्रकाश और शुद्ध वायु, होनेसे मृत्युका भय हट सकता है। अंधेरे कमरोंमें निवास करनेवाले भाई इस वेद मंत्रसे बहुत बोध ले सकते हैं। तथा—

> अग्रशंसदुःशंसाभ्यां करेणानुकरेण च ॥
> यक्ष्मं च सर्वं तेनेतो मृत्युं च निरजामसि ॥
>
> अ. १२।२।२

"पाप और दुराचारके कारण बनी हुई सब (यक्ष्म) बीमारी कृति और अनुकृति द्वारा दूर करता हूं और मृत्युको हटाता हूं।"

इस मंत्रमें रोगोंकी उत्पत्तिके कारण दिये हैं, पाप और दुराचार

के कारण विविध रोग होते हैं। अर्थात् जो धार्मिक जीवन व्यतीत करेंगे और दुराचारमें प्रवृत्त नहीं होंगे वे रोगी नहीं हो सकते। इस मंत्रके "कर और अनुकर" शब्द मंत्रशास्त्र और औपविविद्याके सांकेतिक शब्द हैं, इसलिये जो इन विद्याओंके साथ परिचित होंगे वेही इन संकेतोंका विवरण कर सकते हैं। इस मंत्रके उत्तरार्धसे यह बात स्पष्ट होती है कि रोग और मृत्यु अनुकूल पुरुषार्थोंके द्वारा दूर किये जा सकते हैं। इसलिये निम्न भाव धारण करनेका अत्यंत महत्व है—

विवस्वांन् नो अमृतत्वे दधातु परैतु मृत्युरमृतं न एतु ॥
इमान् रक्षतु पुरुषाना जरिम्णो मोष्वेषामसवो यमं गुः ॥

अ. १८।३।६२

"विवस्वान् हम सबको अमृतमें रखे। मृत्यु दूर होवे और अमृत हमारे पास आवे। इन पुरुषोंकी वृद्धावस्था तक रक्षा होवे और इनके प्राण यमके प्रति न जावें।"

ऊपरके तात्पर्यके साथ इस मंत्रको पढना चाहिए। सूर्यका संबंध अमृतत्वके और मृत्युको हटानेके साथ जोडा है। यह भाव अपने मनमें धारण करना चाहिये। जिनसे मनुष्योंका विश्वास हो सकता है और जिनका विश्वास होता है वे ही पुरुषार्थके द्वारा मृत्युको हटा सकते हैं। तथा—

अपेमं जीवा अरुधन् गृहेभ्यस्तं निर्वहत परि ग्रामादितः ॥
मृत्युर्यमस्यासीद् दूतः प्रचेता असून् पितृभ्यो गमयांचकार ॥

अ. १८।२।२७

"मनुष्य अपने घरोंसे इस मृत्युको दूर करते हैं और ग्रामोंसे भी हटाते हैं। मृत्यु यमका दूत है वह पितरोंसे प्राणोंको प्राप्त करता है।"

घरों और ग्रामोंसे मृत्युको हटानेका भाव उक्त मंत्रमें है। आरोग्य वर्धक सुनियमोंके पालनसे, ग्राम रक्षाके नियमोंके सुयोग्य प्रबंधसे, गृहमेधादिकोंके साधनोंसे मृत्युको दूर किया जा सकता है। व्यक्ति, कुटुंब, ग्राम, प्रांत, समाज, जाति, देश, राष्ट्र इनका आरोग्य बढाना

मनुष्योंके आधीन है यह इस मंत्रका आशय है। जिस प्रमाणसे आरोग्य होगा उस प्रमाणसे मृत्यु दूर हो सकता है। और एक आश्चर्यकारक मंत्र देखिये—

> अयं लोकः प्रियतमो देवानामपराजितः ॥
> यस्मै त्वमिह मृत्यवे दिष्टः पुरुष जज्ञिषे ॥
> स च त्वानु ह्वयामसि मा पुरा जरसो मृथाः ॥
>
> अ. ५।३०।१७

"यह (लोकः) मनुष्य देह देवोंको अत्यंत प्रिय और अपराजित है। हे मनुष्य! जब तू जन्म लेता है तब तू यहां मृत्युके लिये समर्पित होता है; इस लिये तुमको कहता हूं कि तू (जरसः पुरा) वृद्धावस्थाके पूर्व (मा मृथाः) मत मरो।"

मनुष्यका शरीर यह देवोंका प्रिय स्थान है। इसको अपने प्रयत्नसेभी देवोंका मंदिर बनाना चाहिए। यदि देवोंके अनुकूल इसको रखा जाय, तो व्याधि दुर्विचार आदि द्वारा इसका पराभव नहीं होता। यह सदा अपराजित रहता तथा देवोंका कार्य क्षेत्र बनता है। अन्यथा साधारण लोग इसको राक्षसों और पिशाचोंका स्थान बनाकर रोगोंसे परास्त कर देते हैं। यह उचित नहीं है।

जब मनुष्य जन्म लेता है तभी समय मृत्यु उसके पीछे लगता है। मृत्यु समय देखता रहता है, दोषका स्थान प्राप्त होते ही उसको पकडता है, इसलिये सदा सावधान रहना चाहिए। इस कारण वेदने कहा है कि—

"मा पुरा जरसो मृथाः॥" (अ. ५।३०।१७)

You must not die before the natural termination of your life in extreme old age.

अत्यंत वृद्ध अवस्थाके पूर्व मत मर जाओ।

पाठकोंको यह वेदका उपदेश ध्यानमें रखने योग्य है। वृद्धावस्था तक जनताके राष्ट्रहितके महान कार्य करनेके पश्चात् मरना है, उस

कालके पूर्व मरना नहीं है। मनुष्योंका आचरण ऐसा होना चाहिए जिससे इस वेदकी आज्ञाका पालन हो सके। अब यहां निम्न मंत्र देखिये—

> यो अस्य समिधं वेद क्षत्रियेण समाहिताम्।
> नाभिह्वारे पदं नि दधाति स मृत्यवे॥
>
> अ. ६।७६।३

"क्षत्रियके द्वारा रखी हुई इसकी समिधाको जो जानता है वह (अभिह्वारे) कुटिल मार्गमें मृत्युके लिये अपना (पदं) पांव (न निदधाति) नहीं रखता।"

मनुष्यके शरीरमें जीवात्मा क्षत्रिय है क्योंकि सब प्रकारके क्षतों व्रणों और रोगोंसे वही त्राण किंवा रक्षण करता है। इस क्षत्रियद्वारा इस पुरुषरूपी यज्ञमें समिधायें डाली जाती हैं। यह यजमान इस शरीरमें यज्ञ कर रहा है और यह शरीर यज्ञमंडप है। इस प्रकार अपने शरीरको यज्ञरूप जो जानता है वह कुटिल मार्गमें जानेके लिये प्रवृत्त नहीं होता। जो कुटिल मार्गमें जाता है वही मृत्युके वश होता है, परंतु जो सीधे सरल मार्गसे जाता है वह मृत्युको दूर करता है। इस मंत्रमें स्पष्ट कहा है कि सीधामार्ग ही अमरत्व प्राप्त करनेवाला है। सत्य मानवी धर्मका मार्ग ही सीधा है यह बात सुप्रसिद्ध ही है। इसलिये कहा है—

> परं मृत्यो अनु परेहि पंथां यस्ते अन्य इतरो देवयानात्॥
>
> य. ३५।७

"हे मृत्यो! (देवयानात्) देवोंके सीधे मार्गको छोडकर जो (अन्यः) दूसरा टेढा मार्ग है उस मार्गसे दूर भागो।"

देवोंके सरल मार्गपर मृत्युका भय नहीं है। इसलिये अपने आपको देवोंका पवित्र स्थान बनाना चाहिए और ऋषियोंका पवित्र यज्ञमंडप बनाना चाहिए, तब ही मृत्यु दूर हो सकता है।

इस प्रकारसे मृत्युको दूर हटानेके विषयमें वेदकी स्पष्ट आज्ञा है। प्रत्येक मंत्रका सूक्ष्म विचार करेंगे तो उनको प्रत्येक मंत्रसे, मंत्रके बहुत शब्दोंसे भी, अनुपम बोध प्राप्त हो सकता है कि जिससे मृत्यु दूर किया जा सकता है।

मृत्युका प्रश्न सब ही मनुष्योंके सन्मुख है। इसके विषयमें अनेक प्रश्न उत्पन्न होते हैं, उन सबका उत्तर वैदिक प्रमाणों द्वारा दिया जा सकता है। परंतु ऐसा करनेके लिये ग्रंथका विस्तार बहुत होगा। जब कभी वैसा अनुकूल समय मिलेगा तब इस विषयपर संपूर्ण वेद मंत्रोंके उद्धारणके साथ पूरा पूरा विचार पाठकोंके सामने रखेंगे। इस समय अपने स्थानके अनुकूल विचार यहां प्रस्तुत किये हैं। आशा है कि प्रियपाठक इनसे लाभ उठावेंगे।

बडोंके पीछे छोटे जाने चाहिए, परंतु जनता ऐसी आपत्तिमें फंस गई है कि छोटी उमरवाले ही पहिले चले जाते हैं और बडे पीछे रहते हैं। किस स्थान पर यह बिगाड हुआ है इसका विचार करना सब श्रेष्ठ विद्वानोंका काम है। आशा है कि विचारशील श्रेष्ठ सज्जन इसका योग्य विचार करके उत्तम उपाय ढूंढेंगे और उससे जनताको लाभ पहुंचायेंगे। जब—

जीवेम शरदः शतं, भूयश्च शरदः शतात्॥

य. ३६।२४

इस मंत्रके अनुकूल सब देशोंमें सब सज्जन पूर्ण आयुसे संपन्न होंगे तब ही कृतकारिता होनी है। क्या कोई इस रीतिसे कार्य करनेवाले हैं?

आयुष्य बढाओ।

वायु सूक्त ॥ ऋ. १०।१८६।

ऋषिः—उलो वातायनः ॥ देवता–वायुः ॥

वात आ वातु भेषजं शंभु मयो भुवो हृदे ॥
प्र ण आयूंषि तारिषत् ॥ १ ॥

उत वात पिताऽसि न उत भ्रातोत नः सखा ॥
स नो जीवातवे कृधि ॥ २ ॥

यदृदो वात ते गृहेऽमृतस्य निधिर्हितः ॥
ततो नो देहि जीवसे ॥ ३ ॥

यह वायु सूक्त ऋग्वेदके दशम मंडलमें है। इसका देवता वायु है, और ऋषि 'उलो वातायनः' है। 'वातायन' शब्दका अर्थ—A window, a balcony, portico, porch, terrace on the roof of a house, a pavilion; खिडकी, झरोखा, बारजा, उसारा, दहलीज, ड्योढी, चबूतरा, छत्ता, गुंबजदार घर, मंडपाकार घर, बारादरी, छज्जा, खुली हुई छत, बरामदा। 'उल' का अर्थ 'खुला, गमन करने योग्य, आने जाने वाला, गतिमान'। उक्त दोनों शब्दोंके अर्थ मिलानेसे 'उलो वातायनः' का अर्थ निम्न प्रकार प्रतीत होता है—"खुली खिडकी, खुला बरामदा, खुला छत्ता, खुली बारादरी" इत्यादि।

ऋषिके नामके उक्त अर्थ पाठकोंको विचारपूर्वक देखना चाहिए, क्योंकि इनमें एक बडी भारी विलक्षणता है। यह वायु सूक्तका ऋषि है, जिसका अर्थ 'खुली खिडकी' ऐसा होता है। ऋषिका नाम रखनेमें भी बडी चतुराई है। वायु देवताकाही 'खुला बरामदा' ऋषि हो सकता है। पर्जन्य, अग्नि आदि देवताओंका यह ऋषि नहीं है। यदि पर्जन्यके अथवा वृष्टिके समय खिडकी खुली रखी जायगी, तो संभवतः अंदरका

मकान भीग सकता है, इसलिये वायु देवताके लिये ही यह ऋषि माना गया है।

परंतु क्या यह आश्चर्य नहीं, कि 'वायु' देवताका ऋषि 'खुली खिड़की' माना गया है!!! यहां शंका मनमें उठती है, कि कदाचित् ये ऋषियोंके नाम विशेष संकेतसे रखे गये हों। नहीं तो ऐसे अन्वर्थक नाम किस प्रकार आ सकते हैं? विशेष हेतुसे ये नाम रखे होंगे, ऐसा यहां प्रतीत होता है। एकही सूक्तके ऋषिके नामसे ऐसा अनुमान करना हमारे लिये उचित नहीं होगा, यह हम जानते हैं। और यहां इतनाही कह देते हैं, कि इस प्रकार कई अन्य सूक्तोंके ऋषियोंके नाम देखे हैं। इसलिये ऋषियोंके विषयमें किसी स्वतंत्र निबंधमें विचार किया जायगा, ऐसा यहां कह कर, अपने प्रचलित वायु सूक्तका ही विचार यहां प्रस्तुत करेंगे।

उक्त वायु सूक्तके केवल तीन ही मंत्र हैं, परंतु उनमें आयुष्य वर्धन की साधक सब बातें उत्तम प्रकारसे रखी हैं। देखिए—

(१) **वातः भेषजं आ वातु**—(May Vâta breathe his healing balm on us)-वायु अपने रोग दूर करनेवाले गुणोंको हमारे पास ले आवे।

वायुके अंदर एक प्रकारका औषधि गुण है, जिससे रोग दूर हो सकते हैं। यह आशय उक्त मंत्र भागमें स्पष्ट है। केवल वायुके सेवनसे कई रोग दूर हो सकते हैं। 'भेषज' का अर्थ 'रोग दूर करनेका औषध' है। वायुके अंदर यह गुण है। वायु हम सबके पास अर्थात् हमारे घरोंमें खुली रीतिसे आवे जावे और घरोंमें अपना औषधीका गुण रख देवे, जिसके सेवन करनेसे हम सब निर्दोष हो सकते हैं। तात्पर्य यह कि घरोंकी ऐसी रचना होनी चाहिए, कि जिससे वायुका प्रवेश अंदर होनेमें किसी प्रकारकी रुकावट अथवा प्रतिबंध न होवे। घर ऐसे ही बनाने चाहिएँ, कि जिनसे सब कमरोंमें विस्तृत और प्रतिबंधरहित वातायनोंसे अर्थात् खिडकियों द्वारा शुद्ध वायु सदा आ जा सके, और रहनेवाले मनुष्योंको आरोग्यका प्रदान कर सके (Free Ventilation) घरोंमें शुद्ध हवा मुक्त द्वारसे आना आवश्यक है, यह भाव यहां स्पष्ट है।

यदि घरोंमें मुक्तद्वारसे हवा न आ सकेगी, तो उसका 'भेषज' गुण हम सबको प्राप्त नहीं होगा, और हम नीरोग नहीं होंगे। वेदमें घरोंका नाम ही 'क्षय' है इसका यह तात्पर्य है, कि 'घरोंमें निवास करनेसे मनुष्यके आयु, आरोग्य और बलका क्षय' होता है। घरोंमें रहनेके बिना गुजारा नहीं हो सकता। मानवी सभ्यता घरोंमें रहना आवश्यक समझती है, इसलिये वेदने कहा है "हे मनुष्य! घर ही आयु, आरोग्य और बलका क्षय होनेका हेतु है, इसलिये घरके लिये खिडकियां, दरवाजे आदि ऐसे बनाओ कि जिससे मुक्त मार्गसे वायुका प्रवेश अंदर हो जावे और तुम्हारी आयु, नीरोगता और शक्ति बढ सके।" यदि तंग गलियोंके तंग मकानोंके बंद कमरोंमें मनुष्योंको रहनेका अभ्यास हो जायगा, तो आयु और आरोग्यका कितना क्षय हो सकता है, इस बातकी कल्पना पाठक ही कर सकते हैं।

(२) शं-भु-(शं- Welfare, happiness, prosperity, health, peace) 'शं' का अर्थ-खुशी, कुशलता, आनंद, सुख, खैरियत, आरोग्य, नीरोगता, प्रताप, सौभाग्य, पुष्टि, वृद्धि, आराम, सेहत, तन्दुरुस्ती, चंगापन, शांति। 'भु' का अर्थ 'बनानेवाला'। अर्थात् 'शं-भु' का अर्थ' आरोग्य देनेवाला, रोग दूर करनेवाला, तनदुरुस्ती करनेवाला, आराम देनेवाला' वायु है। वायुके सेवनसे उक्त गुण शरीरमें बसते हैं, और जो लोक अपने मकानोंमें हवाके लिये प्रतिबंध खडे करते हैं, उनको शारीरिक आरोग्यता प्राप्त नहीं हो सकती। उनके घरोंमें नाना प्रकारकी व्याधियां और बीमारियां होती हैं, और इस कारण उनको बडा कष्ट भोगना पडता है। इस शब्दद्वारा वेदने बताया है, कि मानवी आरोग्यता हवाके ऊपर ही अवलंबित है। इसलिये सदा शुद्ध वायुका सेवन करना उचित है।

(३) हृदे मयो-भुवः।-(Filling our hearts with health and joy) 'मय' का अर्थ Pleasure, delight, satisfaction आनंद, समाधानवृत्ति, संतोष, हृदयकी प्रसन्नता। वायु हृदयकी प्रसन्नता करता है। आरोग्य वही है कि जिस समय हवासे हृदयको आनंद होता है; जिस समय हवासे कष्ट होने लगते हैं, उस समय समझना चाहिए कि

रोगका निवास शरीरमें हो गया है। आरोग्यकी अवस्थामें हवासे अप्रसन्नता नहीं होती।

तात्पर्य कि वायुसे जैसा शरीरका स्वास्थ्य होता है, वैसा ही हृदय और मनका संतोष बढता है। अब यहां कई पूछेंगे कि यदि ऐसा है तो किसी किसी समय हवा चलनेसे आनंद क्यों नहीं होता। इसका उत्तर अत्यंत स्पष्ट है, कि अनेक प्रकारके सख्त और तंग कपडे धारण करनेके अभ्यासके तथा बंद कमरोंमें सदा रहनेके कारण आज कलके मनुष्योंके शरीर बीमारीसे भरे रहते हैं। इसलिये शुद्ध वायुका सेवन करनेका अभ्यास बढाना आवश्यक है। जिससे उत्तम स्वास्थ्य प्राप्त होगा और वायुसेवनके महत्त्वका भी पता लग जायगा।

(४) नः आयूंषि प्र तारिषत् ।-(May he prolong our days of life) वायु हम सबकी आयु दीर्घ बनावे। अर्थात् प्राणियोंके आयुष्य दीर्घ बनाना वायुका कार्य है। इसलिये मनुष्योंको शुद्ध वायुका सेवन करना चाहिए। वायु तो सबकी आयु दीर्घ करनेके लिये बैठा ही है, अथवा बिना पूछे लोगोंके पास चला आता है। परंतु लोगही ऐसे हैं कि दीवारोंके किले बनाकर बीमारियोंके कष्ट भोगनेके लिये खुशीसे तैयार होते हैं। परमात्मा कितना कृपालु है, कि जिसने वायुका इतना अमर्याद समुद्र बना रखा है, कि जिसका सेवन करनेसे हम दीर्घायु, नीरोग और बलिष्ठ बिना व्यय करनेके हो सकते हैं। परंतु मनुष्य ऐसे हैं, कि सदा बंद और तंग मकानोंमें अपने आपको बंद करेंगे, बीमार होंगे और विषरूप दवाइयां मोल लेकर खावेंगे, परंतु वेदकी आज्ञाके अनुसार वायु सेवन नहीं करेंगे!!! क्या यह बडी हंसनी नहीं है? यदि मनुष्योंको दीर्घ आयुष्य चाहिए, तो खुली हवामें रहना चाहिए। जितना समय आप खुली हवामें और सूर्य प्रकाशमें व्यतीत करेंगे उतना आरोग्य आपके पास आ सकता है।

(५) हे वात! नः उत पिता असि ।-(O Vâta! Thou art our protector)-वायु हम सबका रक्षक है। लोग समझते हैं कि हवा लग जानेसे बीमारी आती है, इसलिये कपडे लपेट लपेट

कर शरीरको बंद कर देते हैं तथा मकानके दरवाजे, खिडकियां, झरोंखे आदि सब बंद रखते हैं ! ! ! यह कितना आश्चर्य है ? वैदिक धर्मके विरुद्ध आचरण इससे अधिक और क्या हो सकता है। अपने पितासे भाग कर दूर रहनेवाले कुपुत्रकी सब लोग निंदा ही करते हैं; परंतु वायुरूपी हम सबके पितासे जब हम भागते हैं, तो हम सब कुपुत्र नहीं होते ? वायु हम सबका पिता है, उसको हमारे मकानोंमें 'प्रतिबंध' होता है। क्या यही हमारी पितृभक्ति है ? पिताके पास पुत्रको जाना चाहिए, और पिता पास आने लगेगा तो उसका सम्मान पुत्रको करना चाहिए। क्या ऐसा व्यवहार वायु और मनुष्योंका है ? और प्रिय पाठको ! विचार कीजिए और अपने अस्वास्थ्यका कारण जान लीजिए। वेदका धर्म बता रहा है, कि हम सबका पिता, रक्षक और पोषक वायु है। इस लिये अपने घरोंमें उसका स्वागत कीजिए।

(६) उत भ्राता उत नः सखा।–(Indeed, thou art a brother and a friend)–वायु हम सबका भाई और मित्र है। 'भ्राता' का दूसरा अर्थ पुष्टि करनेवाला ऐसा होता है, वायुके सेवनसे पुष्टि भी होती है। 'सखा' शब्द 'सब प्रकारका हित करनेवाला वायु है,' यह भाव बता रहा है। शुद्ध वायुके सेवनसे कभी अहित नहीं होगा, यह निश्चय रखिए। अपने आपको सदा बंद रखनेके बुरे अभ्याससे सब कुछ अनर्थ हो रहे हैं। इस वास्तविक बातको न जानते हुए मनुष्य वायुसे ही डरते रहते हैं। इसलिये धीरे धीरे खुली हवामें रहनेका अभ्यास बढाना सबको उचित है। क्योंकि मनुष्योंका आरोग्य इसीके साथ रहनेसे बढ सकता है।

(७) सः नः जीवातवे कृधि–(So give us strength that we may live long)–वह वायु हम सबको ऐसी शक्ति देवे कि जिससे हम सब दीर्घ आयुका उपभोग ले सकेंगे। इसका तात्पर्य स्पष्ट है। वायुके ही सेवनसे मनुष्योंके शरीरमें एक प्रकारकी अद्भुत जीवन शक्ति बढती है, जिससे मनुष्योंका दीर्घ जीवन हो सकता है। इस लिये जो जो मनुष्य अपना दीर्घ जीवन करना चाहते हैं, वे सब

अपना समय जहां तक हो सके वहां तक घरके बाहिर खुली हवामें व्यतीत करें, क्योंकि घर ही 'क्षय' का हेतु है और शुद्ध वायु दीर्घ आयुष्य देनेवाला है।

(८) हे वात ! यद् अदः ते गृहे अमृतस्य निधिः हितः। ततः नः जीवसे देहि।—(O Vâta ! The store of immortality is there in thy home, give us thereof that we may live long)—हे वायो ! तेरे घरमें ही अमरपनका खजाना रखा हुआ है, उसमेंसे थोडासा हम सबको देओ जिससे हम दीर्घ आयु प्राप्त कर सकें। इसका तात्पर्य स्पष्ट है। वायुमें ऐसा शोभन गुण है, कि जिसके प्राप्त करनेसे निःसंदेह दीर्घ आयुष्य होता है। इसीका भाव पूर्व मंत्रोंमें 'भेषज, शंभु, मयोभुवः' आदि शब्दों द्वारा व्यक्त किया है।

वायुका इतना महत्व है। वेदकी भाषा भी अत्यंत स्पष्ट है, किसी प्रकारका संदेह नहीं है। फिर क्या कारण है कि लोग विरुद्ध मार्गसे जा रहे हैं। हे लोगो ! अमृतका समुद्र आपके पास परमेश्वरने दिया है। कोई मूल्य देना नहीं पडता, फिर आप इस अमृतका सेवन न करते हुए क्यों मोलसे विषोंको खरीदते हैं ? क्या आवश्यकता है ? इन मंत्रोंको स्मरण कीजिए और अपना आयुष्य बढाइए।

आयुष्य बढाना वेदको अभीष्ट है। आप सब ऐसे उपाय कर रहे हैं, कि जिससे आयु, आरोग्य और बल क्षीण हो रहा है। आपका विपरूप औषधोंपर जितना विश्वास है, उससे दसवां हिस्सा भी यदि 'इस अमृतके समुद्रपर विश्वास' बैठ जायगा तो आपका निःसंदेह कल्याण होगा। स्मरण रखिए कि शुद्ध वायु केवल 'अमृतरूप' है। इसके योग्य सेवनसे आपको दीर्घ आयुष्य, उत्तम स्वास्थ्य और बल प्राप्त हो सकता है। वेदका कार्य वेदने किया है अब देखना है, कि आप कैसा आचरण करते हैं।

दीर्घ आयुष्य ।

वैदिक धर्मका मुख्य लक्ष्य दीर्घ आयुष्य प्राप्त करनेकी ओर विशेष है। मनुष्योंकी सौ वर्षकी साधारण आयु मानी गयी है। इससे कम आयुमें मरना अवश्य रोगका परिणाम है। माताके दोष, बालकके दोष, पिता माताके दोष तथा अपने दोष बढ़नेके कारण आयु घटती है, तथा समाजकी त्रुटि, राष्ट्रकी दरिद्रता, विदेशियोंका आक्रमण और अपना धार्मिक जीवन आयुष्यकी वृद्धि करता है। वैदिक धर्मके अनुसार केवल सौ वर्ष ही साधारण आयु मान लेना ही पर्याप्त नहीं है, परन्तुः—

भूयश्च शरदः शतात् ॥

यजु० अ० ३६। २४

सौ वर्षोंसे भी (भूयः) अधिक आयु प्राप्त करना आवश्यक है। प्रतिदिन संध्या में इस मंत्र का पाठ करना इस लिये आवश्यक समझा गया है, कि लोग आयु के प्रश्न की ओर अवश्य विशेष ध्यान लगा देते रहें। विशेष ध्यान पूर्वक सदाचार करनेसे तथा अनियमोंमें न फंसने से मनुष्य दुगुनी अथवा तिगुनी आयु भी प्राप्त कर सकता है। योग साधनकी विशेषता इसीलिये है। योगके आठ अंग हैं। यम, और नियमोंका पालन करनेसे व्यक्ति और समाजकी पवित्रता बढ़ती है। आसनोंसे शरीरके नस नाड़ियोंके अन्दरसे रोग उत्पन्न करनेवाले सब प्रकारके मल दूर होते हैं और शरीर शुद्ध होनेके कारण नीरोगता प्राप्त होती है। प्राणायामसे प्राणरूपी जीवनशक्तिमें विशेष बल प्राप्त होता है, फेफड़े बलवान होनेके कारण श्वास और उच्छ्वासकी क्रिया ठीक प्रकार होती है। और श्वासोच्छ्वाससे रक्तशुद्धि होनेके कारण दीर्घ जीवन प्राप्त होता है। अर्थात् यम नियम आसन और प्राणायामका दीर्घ जीवनके साथ अत्यन्त घनिष्ट सम्बन्ध है। यदि किसीको दीर्घ

आयुष्य प्राप्त करनेकी अभिलाषा हो तो, उसको चाहिये कि वह उक्त चारों अङ्गोंका यथाविधि, अभ्यास करे।

इन चार अंगोंके अभ्यासका फल तत्काल प्राप्त होता है। दो चार मासके अन्दर ही इसका अनुभव पाठक ले सकते हैं। आसन और प्राणायामके अभ्याससे पंद्रह वर्षकी कब्जी, मलावरोध, अपचन, अरुचि आदि रोग पूर्णतासे हटे हैं। जो गुण दवाओंसे नहीं प्राप्त हो सकते और सहस्रों रुपयों का व्यय करने से जिस निरोगताकी प्राप्ति नहीं हो सकती, उस आरोग्यकी प्राप्ति आसन और प्राणायाम से होती है। रुपयोंका व्यय करनेकी आवश्यकता नहीं, डाक्टरों और वैद्योंके पास टेढा मुंह करके जानेकी आवश्यकता नहीं। आसन और प्राणायामसे विना मूल्य आरोग्यकी प्राप्ति होती है। परन्तु आश्चर्य यह है कि इस योगाभ्यासकी ओर बहुत कम लोग ध्यान देते हैं।

हमारे प्राचीन ऋषि मुनियों ने शरीर की सब नस नाडियों का उत्तम अभ्यास करके शारीरिक आरोग्यता प्राप्त करनेकी विधियां निश्चित की हैं और इन सबका योगके पूर्वोक्त चारों अंगोंमें अन्तर्भाव किया; यह उन ऋषियोंकी बुद्धिमत्ता है, परन्तु उनकी आर्य संतानोंमें इस प्रकार शिथिलता है कि अनुभवसिद्ध नियमोंका पालन भी उनसे नहीं हो सकता।

आयुः पृथिव्यां द्रविणम् ॥

(आंध्र) तैत्तिरीय आरण्यक १०।३६

'इस पृथ्वीपर सच्चा धन केवल आयुही है।" यह ऋषियोंका सिद्धांत सर्वकाल में अटूट रहेगा। आयु रहने पर अन्य धनोंका उपयोग और उपभोग किया जा सकता है। परन्तु यदि आयु ही [illegible] रहेगी, तो सब सांसारिक सुखोपभोगके साधन प्राप्त होनेकी सम्भावना होने पर भी उनका कोई कार्य [illegible]हीं हो सकता। इस लिये सब धनोंसे आयु ही श्रेष्ठ धन है। इस [illegible]युका उपयोग आयुकी वृद्धि करनेके लिये करना चाहिये। इस [illegible]यमें वेदका उपदेश निम्न प्रकार है—

[illegible]जः पनत आयवे ॥

ऋग्वेद ६।३७।८.

"दीर्घ आयुकी प्राप्तिके लिये अपनी आयुको पवित्र बनाओ।" पवित्रता ही एक विशेष गुण है कि जिससे नीरोगता और दीर्घ जीवन प्राप्त होता है। कपड़ा मलीन होनेसे जल्दी फट जाता है और स्वच्छ रखनेसे बहुत दिनों तक चलता है। जहां मल बढ़ेगे वहां विनाशका साम्राज्य अवश्य होगा इस में कोई सन्देह नहीं। यमनियमोंमें "शौच" अर्थात् शुद्धता तथा पवित्रता का उल्लेख इसी बात की सिद्धि कर रहा है। परमात्मा पूर्णतया निर्मल होने के कारण अविनाशी है जो निर्मल होते हैं वे अविनाशी होते हैं। अर्थात् जहां मल होंगे वहां नाश अवश्य होगा।

इसलिये दीर्घायु प्राप्त करनेवालों को उचित है कि वे पवित्रता प्राप्त करें। शरीर के अंगों के विषय में ही पाठक देख सकते हैं कि जो दंत-धावन (दांतुन) नहीं करते उन के दांत मलीन रहते हैं और वे शीघ्र ही गिर जाते हैं। शरीर के ऊपर मल का संचय अधिक होने के कारण फोड़े फुन्सियां आदि बीमारी होती हैं। मल के कारण रक्त की अशुद्धि होने से अनेक व्याधियां होती हैं। उपस्थ इन्द्रियोंके चारों ओर मल का संचय होने से वीर्य क्षीण होता है और वीर्यक्षीण होने से मनुष्य अल्पायु होता है। पेट में मल का भार होने से विविध प्रकार के कृमिविकार होते हैं। फेफड़ों में मल बढ़ जाने के कारण श्वास, दमा, क्षय आदि भयानक व्याधियां होती हैं। इस प्रकार हरएक शरीर के अवयव में मल का संचय होने से बीमारी होती है। तथा शुद्धता और पवित्रता होने से उक्त सब बीमारियां दूर होती हैं। यह एक शौच अर्थात् पवित्रता का माहात्म्य है।

संतोष अर्थात् मन की प्रसन्नता का भी विलक्षण गुण है। मनका संतोष आयुष्य बढाता है। चेहरे पर सदा स्मित रखना चाहिये। हास्य के कारण आयु बढ़ती है जो मनुष्य हास्यमुख होते हैं वे दीर्घ जीवी होते हैं। हास्यमुख रखने से आयुष्य बढ़ता है इसलिये मनुष्यों को उचित है कि वे सदा प्रसन्न चित्त रहें। क्रोध के कारण आयु न्यून होता है क्रोध के झटके से रुधिर में भयानक खिलवाड़ होता है और रुधिर की

जीवनशक्ति का नाश होता है। इस लिये धर्मशास्त्र ने क्रोध की गणना शत्रुगणों में की है। काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मत्सर ये छः शत्रु हैं जो मनुष्य की आयु छीनते हैं। इसलिये इन शत्रुओं को सदा दबाना चाहिये।

'तप' के कारण शीत उष्ण सहन करने की शक्ति शरीर में बढ़ती है जिससे बीमारियाँ कम होतीं हैं। स्वाध्याय से अपनी वास्तविक अवस्था का ज्ञान होता है। ईश्वरभक्ति से आत्मा की प्रसन्नता प्राप्त होती है। इसी प्रकार अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह आदि नियमों से शरीरका स्वास्थ्य निःसंदय बढ़ता है। शरीर के आरोग्य की दृष्टि से इन यमनियमों की अत्यन्त आवश्यकता है। इसलिये जो मनुष्य नीरोगता और दीर्घायु प्राप्त करना चाहते हैं वे यम, नियम, आसन और प्राणायाम का अवश्य अभ्यास करें।

आत्म-विश्वास।

जीवात्माके स्वभावमें 'प्रेम' एक विशेष गुण है। जहां इसकी एकाग्रता होती है वहां इसके प्रेमका स्रोत बहने लगता है। यहां तक इसके अंदर प्रेम है कि प्रेमके अतिशयमें यह अपने आपको भूलभी जाता है। यही भक्तिका अतिशय है। यदि इस प्रकारकी दृढ भक्ति यह जीव परमात्माके विषयमें करेगा तो निःसंदेह इसकी उन्नति होनेमें शंकाही नहीं रहेगी। परंतु साधारण मनुष्योंके व्यवहारमें ऐसा हुआ करता है, कि वे परमेश्वरकी भक्ति निरर्थक समझकर छोड देते हैं और अन्य विषयोंके भक्त बनते हैं। कई लोग स्त्रियोंके भक्त बनकर व्यभिचार करते हैं, दूसरे मदिराादि दुष्ट व्यसनोंके भक्त बनते हैं और अपनी खराबी कर लेते हैं। इसीप्रकार अन्य मनुष्य अन्य ग्राम्य इच्छाकी भक्ति करते हैं और गिरते हैं।

यदि उच्चकी भक्ति नहीं होगी तो नीचकी होतीही रहेगी। जीवात्माका स्वभाव ही भक्ति करनेका है। यदि उच्च ईश्वरकी भक्ति न होगी तो किसी दूसरेकी अवश्य होगी ही। इसलिये अपने व्यवहारोंके विषयमें सावधानी रखना हरएकका कर्तव्य है।

परमेश्वरकी भक्ति करनेसे आत्माके अंदर अनंत शुभ गुणोंका संवर्धन होने लगता है और स्वस्ति, शांति और निर्भयता प्राप्त होनेसे विलक्षण आत्मविश्वास उत्पन्न होता है। इसलिये वेदने कहा है कि—

य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते ॥

यजु० २५।१३

'जो ईश्वर आत्मविश्वास और आत्मिक बल देता है इसलिये जिसकी सब सज्जन उपासना करते हैं।' आत्मविश्वासमें एक प्रकारकी बडी विलक्षण

शक्ति है। अपनी शक्तिके विषयमें विश्वास (Faith) चाहिए अन्यथा हाथसे कोई कार्य नहीं हो सकता। जिसका इसप्रकार अपने ऊपर विश्वास नहीं है, उसको आत्मघातकी कहते हैं।

असुर्या नाम ते लोका अंधेन तमसावृताः॥
तांस्ते प्रेत्यापि गच्छंति ये के चात्महनो जनाः॥

यजु० ४०।३

'आत्मघाती लोग अवनत होते हैं' यह भाव उक्त मंत्रका है। अपने आत्मिक बलपर जिनका विश्वास नहीं है उनकी कभी उन्नति हो ही नहीं सकती। 'परमेश्वर सर्वत्र व्यापक है। सब स्थिरचरमें परमेश्वर बसता है। उसका स्मरण करते हुए निष्काम और निःस्वार्थ भावसे कर्म करते हुए जगत्का उपभोग करना चाहिए। किसीके धनका अपहरण करना उचित नहीं,' निर्लोभवृत्तिसे सर्व व्यवहार करना चाहिये। क्योंकि सब धन परमेश्वरकाही है। हमारे पास जो धन है वह सब उसी एक अद्वितीय परमात्माकाहै। सबके हितके लिये उसने हमारे पास रखा है। इस प्रकार भाव धारण करते हुए दूसरोंकी सहायता करनेमें अपनी शक्तिका व्यय करना चाहिए। 'इसप्रकारके शुद्ध कर्म और पुरुषार्थ करते हुए सौ वर्ष जीनेकी प्रबल इच्छा धारण करके उत्तम पुरुषार्थका जीवन व्यतीत करना चाहिए, यही एक धर्मका मार्ग है। इससे भिन्न दूसरा कोई मार्ग नहीं है। पुरुषार्थ करनेसे कभी दोष नहीं हो सकता।' (यजु० ४०।१-२) यह वेदका उपदेश है। यही आत्मविश्वासका धर्म है। इस धर्मके ऊपर जिनकी श्रद्धा नहीं होती वे आत्मघातकी पतित होते हैं। तात्पर्य आत्मविश्वासकी अद्भुत शक्ति है और हरएकको उस शक्तिकी प्राप्ति करनी चाहिए। परमेश्वरकी भक्तिसे ही वह शक्ति सुगमतासे प्राप्त होती है।

जिस समय मनुष्यके मनमें अपनी शक्तिके विषयमें संदेह उत्पन्न होता है, उसी समय उसकी संपूर्ण शक्ति नष्ट होने लगती है। विश्वास और श्रद्धासे शक्ति बढती है और संदेहसे कमजोरी बढने लगती है। यदि अपने ऊपर स्वयं अपनाही विश्वास न होगा, तो दूसरा कोईभी

उसकी सहायता नहीं कर सकता। इस प्रकार एकका संदेह दूसरेंके शक्तियोंकोभी अशक्त बनाता है।

'आत्मविश्वासी मनुष्य सदा विजयी होते हैं।' आपत्ति प्राप्त होनेसे उनका धैर्य दुगना होता है, दुःखोंसे सुखका मार्ग उनको प्राप्त होता है, क्लेशोंसे आनंदका धाम वे प्राप्त कर सकते हैं। जहां दूसरे हताश हो जाते हैं वहां उत्साहका तेज उनके मुखमंडलपर चमकने लगता है। जो विपत्ति, दूसरोंको प्रतिबंधक होती है वही विपत्ति आत्मविश्वासी मनुष्योंको आगे बढनेके लिये कारणीभूत होती है।

क्या आपत्तियां, विपत्तियां, क्लेश और दुःख मनुष्यको गिरानेवाले हैं? कदापि नहीं। ये एक प्रकारकी अवस्थाएं हैं। ज्ञाता मनुष्य इनसेही अपना बल बढाता है। परंतु अविचारी मनुष्य इनको देखकर भयभीत होता है। इनको देखकर डरना नहीं चाहिए। भयको दूर करनेसे सब विपत्तियोंमें आनंद प्राप्त होगा, कारागृहमें मन स्वतंत्र विचार कर सकेगा, प्रतिबंधोंमें स्वातंत्र्यका बीज दिखाई देगा।

क्या कोई मनुष्य जानता नहीं कि, आजका सूर्य अस्त होनेसेही कलके सूर्योदयका अद्भुत आनंद प्राप्त हो सकता है, अंधकारकी कष्टमय रात्रिही दिव्य प्रकाशमय दिनकी जननी है, मनुष्यों अथवा प्राणियोंका मृत्यु ही बालकोंके जन्मका आनंद देनेका मुख्य हेतु है, जन्मका आनंद यदि चाहिए तो मृत्युके कष्ट अवश्य भोगने ही चाहिए। सामाजिक प्रतिबंधोंमें ही समाज सुधारक जन्म लेकर पुरुषार्थसे सामाजिक स्वातंत्र्य लोगोंको अर्पण करके अपना नाम कीर्तिसे अजरामर कर देते हैं। धार्मिक अंधकारकी अवस्थामें ही महान धर्मसंस्थापक आचार्य जन्म लेकर ज्ञानसूर्यके प्रकाशमें सब लोगोंको लाकर अपना जगद्गुरुत्व सिद्ध कर देते हैं। राष्ट्रीय परतंत्रतामें ही धीर पुरुष जन्म लेते हैं और अपने सर्वस्वकी आहुति राष्ट्रीय महायज्ञमें अर्पण करके अपने राष्ट्रको स्वातंत्र्यका दान करके यशस्वी होकर पूजनीय बनते हैं। तात्पर्य आपत्तिके अग्निमें जो नहीं तपता वह वंदनीय कभी नहीं हो सकता। इन महान दिव्य विभूतियोंको

यदि विपत्तियोंसे रुकावट नहीं हुई, तो अन्योंकोभी क्यों होगी। विपत्तियोंसे स्वयं रुकावट नहीं होगी यदि आप उनसे डरकर पीछे नहीं भागेंगे। आप अपने स्थानपर निश्चयसे आत्मविश्वासके साथ खडे रहिए। जब आप आपत्तियोंका मुकाबला करेंगे तब कोई विपत्ति आपके सन्मुख खडी नहीं रहेगी।

तात्पर्य आप स्वयं अपनी अधोगतिके कारण हैं यदि आपको आपत्ति, विपत्ति, दुर्दशा, कष्टस्थिति, पराधीनता, दीनता, अधोगति, आदि सता रहे हैं तो उनके अस्तित्वका कारण आपके अंदर विद्यमान है। यदि आपकी आत्मामें आत्मविश्वास होगा तो कोई विपत्ति आपके सन्मुख नहीं ठहर सकेगी, यह वैदिकधर्मका सिद्धांत है।

आप विचार कीजिए कि आत्मशक्तिकी वृद्धि करनेमें आपका कितना समय जा रहा है, और व्यर्थ ईर्ष्या, द्वेष, भय, चिंता, लोभ, मत्सर, क्रोध, कुविचार और दुराचार आदिमें आपका कितना समय जा रहा है। आप किसी किसी समय चाहते हैं, कि दूसरेका द्वेष करके उसको नीचे गिरानेसे आप उन्नत समझे जायगे, परंतु यह आपका भ्रम है। ऐसा करनेसे उस दूसरेका नुकसान होगा या नहीं यह दूसरी बात है, परंतु उतना समय आपका व्यर्थ जानेसे आपका सबसे प्रथम नुकसान हो रहा है इसका विचार कीजिए। ऐसे फंदोंमें आपकी जो आयु जाति है उससे आपका कैसे लाभ हो सकता है? आपकी आयु आपकी उन्नतिके पुरुषार्थमें ही पूर्णतया लगनी चाहिए। तभी आत्माका विकास हो सकता है और आत्मविश्वास बढ सकता है।

अब इस दृष्टिसे विचार कीजिए कि आप स्वयं अपने लिये आपत्तियां बढा रहे हैं या कम कर रहे हैं। आप अपने मनके सुसंस्कारोंसे आपत्तियोंको संपत्ति बना सकते हैं, दुःखोंको सुखोंमें परिणत कर सकते हैं, क्लेशोंका रूपांतर प्रसन्नतामें कर सकते हैं, पराधीनताके उदरमें स्वातंत्र्यका जन्म हो सकता है। इसके लिये एकमात्र आपका निश्चय चाहिए और आत्माके अंदर श्रद्धा भक्तिके साथ आत्मविश्वास चाहिए।

आप जो भक्ति दुर्व्यसनोंमें लगा रहे हैं वही अच्छे पुरुषार्थोंमें लगाइए, जो श्रद्धा हीन मार्ग पर रखी है वही अच्छे सीधे मार्ग पर रखिए, जो स्तुति निंदामें व्यतीत हो रहा है वही गुणग्रहण करनेमें समर्पित कीजिए, तात्पर्य कि आप थोडीसी अपनी दृष्टिकी दिशा बदल दीजिए, फिर आपको पता लग आयगा, कि वही आपकी शक्ति, जो पहिले बाधक हो रही थी, वही किस प्रकार साधक हो सकती है और आपकी योग्यता कितनी ऊंची हो सकती है।

आपका विश्वास नहीं है तो न सही, चार छः महिने इस प्रकार निश्चयपूर्वक करके देखिए। यदि आपकी हानि हुए, तो 'वैदिक-धर्म" जिम्मेवार है।

उन्नतिका मार्ग।

उद्यानं ते पुरुष नावयानं जीवातुं ते दक्षतातिं कृणोमि ॥
आ हि रोहेममसृतं सुखं रथमथ जिर्विर्विदथमा वदासि ॥
अथर्व. ८।१।६ ॥

हे मनुष्य! ऊपर चढो, गिरो मत। दीर्घजीवनके लिये ही दक्षताका बल तुझे देता हूं। इस सुखमय अमृतपूर्ण रथपर चढो और पूर्ण दीर्घ आयुष्यके साथ जीवनयुद्धमें भाषण करो ॥

आत्म परीक्षण।

आत्मपरीक्षणका अर्थ है "अपनी परीक्षा स्वयं करना"। यदि इस विश्वमें सबसे कठिन कोई बात है तो यही है। हरएक मनुष्य दूसरोंकी परीक्षा कर सकता है। जो भूल दूसरोंकी परीक्षा करनेमें नहीं होती, वही भूल अपनी परीक्षा करनेके समय होती है, दूसरोंके छोटे दोषभी बडे प्रतीत होते हैं और अपने बडे दोषभी छोटे प्रतीत होते हैं। इस प्रकार विचार करनेसे हरएक विचारी मनुष्यको प्रतीत हो सकता है, कि अपनी परीक्षा करनेका कार्य कितना मुश्किल है। वैदिक धर्ममें इसी लिये आत्मपरीक्षाका महत्व बडा भारी माना है। आत्म-परीक्षाके विना धर्मका अनुष्ठान योग्य रीतिसे नहीं हो सकता। इस लिये ब्राह्मण-ग्रन्थमें कहा है कि:—

यद्रात्र्या पापमकार्षं मनसा वाचा हस्ताभ्यां पद्भ्यामुदरेण
शिश्ना रात्रिस्तदवलंपतु यत् किंच दुरितं मयि।

तै० आ० १०।२५।१

(१) अच्छे और बुरे कर्मोंका विचार न होना।

(२) अच्छे और बुरे कर्मोंका विचार करनेकी शक्ति रखने परभी उसकी ओर ध्यान न देना।

(३) बुरे विचारोंको रोकना और अच्छे विचारोंको अमलमें लाना।

(४) बुरे विचारोंकी न्यूनता और अच्छे विचारोंकी प्रधानता प्राप्त करना।

(५) मनमें बुरे विचारोंकी लहर उत्पन्न न होना।

मनका संयम इस लिये करना होता है कि उसमें बुरे विचारही उत्पन्न न हो सकें। मनमें कुत्सित भाव जिस समय तक रहेंगे तब तक बुरे विचार उत्पन्न न होना सर्वथा असम्भव है। इस लिये मनको शुद्ध विचारोंके वायुमण्डलमें सदा रखना चाहिये, इस लिये वेदने कहा है:—

भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः॥
स्थिरैरंगैस्तुष्टुवांसस्तनूभिर्व्यशेम देवहितं यदायुः॥

(ऋग्वेद और यजुर्वेद)

"कानोंसे अच्छा भाषण श्रवण करें। आंखोंसे अच्छा रूप देखें। सुदृढ अवयवोंके साथ बलवान शरीरसे युक्त होकर श्रेष्ठोंकी प्रशंसा करें। और जब तक आयु होगी तबतक श्रेष्ठोंका हित करें।"

यह वेदके मन्त्रकी सूचना सब मनुष्योंको मनमें धारण करनी चाहिये। इन्द्रियों द्वारा बुराइयोंका प्रवेश मनमें होता है। और वहां बुरे संस्कार जम जाते हैं। मनमें बुरे संस्कार जमा होनेके कारणही मनुष्य अवनत होजाते हैं। इस लिये अपनी इन्द्रियोंको कभी बुराईकी ओर भेजना नहीं चाहिये। यदि किसी कारण एकवार मन बुराईकी ओर गया तो उसको वहांही रोकना। यदि रोकने परभी न रुक गया और उसके द्वारा बुरा कर्म हो गया, तो पश्चात्तापद्वारा प्रबल निश्चयसे फिर दुबारा उसको रोकनेका प्रयत्न करना उचित है। इसी प्रकार बार बार प्रयत्न होने पर मन पवित्र विचार करने लगता है। और टेढी चालोंसे पीछे हटता रहता है। परन्तु यदि मनुष्यही उसके टेढे विचारोंको पसन्द करने लगेगा, तो फिर उसके सुधरनेका कोई उपाय नहीं। दृढ विश्वाससे प्रबल प्रयत्न किया

जाय तभी उसको रोका जाता है। जिस प्रकार फटा हुआ कपड़ा योग्य समय पर थोड़ासा सीनेसे ठीक हो जाता है। परन्तु वही फटा हुआ कपड़ा समयपर न सीया जाय तो अधिक अधिक फटता चला जाता है उसी प्रकार मनकी अवस्था है। मनको कपड़ा समझिए और उसके दोषोंको छेद समझ लीजिये। जितने दोष मनमें होंगे उतने छिद्र मनरूपी कपडेमें हैं ऐसा आप समझ लीजिये। यदि एक छोटासा छिद्र बडे कपडेका नाश कर सकता है तो असंख्य छिद्र होने पर कपडेकी क्या अवस्था हो सकती है? इसका विचार हरएक मनुष्य कर सकता है। वेद मन्त्रमेंभी यही विचार आयाहै।

यन्मे छिद्रं चक्षुषो हृदयस्य मनसो वातितृण्णं
बृहस्पतिर्मे तद्दधातु ॥ शं नो भवतु भुवनस्य यस्पतिः॥
यजु० अ० ३६। २

" जो मेरी आंख, हृदय और मन आदि इन्द्रियोंमें फटा हुआ छिद्र होगा उसको ज्ञानका पालक ठीक करे। और जो विश्वका स्वामी है वह हम सबके लिये शांति देवे।"

इस मन्त्रकी विशेष व्याख्या "सच्ची शांतिका सच्चा उपाय" नामक पुस्तक में पाठक देख सकते हैं। यहां मनके तथा इन्द्रियोंके छिद्रका उल्लेख अत्यन्त महत्वपूर्ण है। दोष और कुविचार ही मनके छेद हैं। इस लिये किसीको भी उचित नहीं कि वह अपनी इन्द्रियां द्वारा दोष करके इन्द्रियोंको छिद्रयुक्त बनावे। स्वयं ही अपने कपडोंको फाडनेके समान ही उक्त आचरण है। ज्ञानके द्वारा मनको रोकनेसे दोष दूर हो जाते हैं। यह कार्य यद्यपि बहुत कठिन है तथापि जो मनुष्य धर्मके मार्गसे चलना चाहते हैं उनको इस बातकी ओर मुख्यतया ध्यान देना चाहिए। मनके विषयमें शिथिलता कभी नहीं रखनी चाहिये। ढीले मनके कारण ही मनुष्यमें अशक्तता होती है। संयमके कारण मन बलवान होता है। इसलिये कहा है कि—

मन एव मनुष्याणां
कारणं बन्धमोक्षयोः॥ मै. उ. ६।३४

"मनुष्योंकी पराधीनताके लिये मन ही कारण है।" अर्थात् जिनका

मन शुद्ध स्वतन्त्र और प्रबल होता है वे परतन्त्र नहीं बन सकते और जिनका मन अपवित्र, पराधीन और निर्बल होता है वे कभी स्वतन्त्र नहीं हो सकते । इसलिये बन्धन और मोचन मनके ऊपर सर्वथा निर्भर है ।

मनकी और इन्द्रियोंकी शुद्धि यदि प्राप्त करनी है तो आत्मपरीक्षण अवश्य करना चाहिए । प्रतिदिन सायं और प्रातः अपनी परीक्षा करना उचित है । इस प्रकार जो अपनी परीक्षा करेंगे और मनके व्यापारोंका निरीक्षण करेंगे उनकी उन्नति शीघ्रही हो सकती है ।

आज ही प्रारंभ करो।

न श्वः श्व इत्युपासीत ।
को हि मनुष्यस्य श्वो वेद ॥
श. ब्रा. २।१।३।९

"कल करूंगा, कल किया जायगा, ऐसा न कहो । कौन भला मनुष्यके कलकी बात जानता है ।"

सबसे बडा आश्चर्य ।

इस विश्वमें स्थान स्थान पर आश्चर्य हैं परन्तु सबसे बड़ा आश्चर्य मनुष्यके व्यवहारमें है । देखिये—

(१) मनुष्य बडे नगरमें रहना चाहता है । छोटे ग्राममें रहना नहीं चाहता । छोटे ग्राममें रहनेसे आबोहवा सुगमतासे विपुल प्राप्त होनेके कारण ग्रामीण मनुष्योंका स्वास्थ्य और आरोग्य अधिक अच्छा होता है । बडे नगरोंमें नाना व्याधियां मुफ्तमें मिलती हैं । रोग और अशक्तता भी ग्रामोंकी अपेक्षा नगरमें अधिक होती है । परन्तु सबकी दृष्टि ग्रामोंको छोडकर नगरोंके तंग मकानोंमें घुसनेकी ओर अधिक रहती है ।

(२) मनुष्य बडे अच्छे मकानमें रहना चाहता है । जितना व्यय मकानपर किया जाता है उससे शतांशभी शरीरको दीर्घजीवी और बलवान करनेके लिये नहीं किया जाता । मकान और उद्यानकी शोभाके लिये जितना ख्याल रखा जाता है, उसका सौंवा हिस्सा भी शरीरकी नीरोगताके लिये नहीं दिया जाता ।

(३) मनुष्य अपने कपडे लत्ते, नेकटाय, कॉलर, बूट, सूट आदिमें फैशन करनेके लिये जितना व्यय करता है और जितना ध्यान देता है वैसा अपने शरीरका विचार नहीं करता, परन्तु वह नहीं जानता कि शरीरके लियेही ये भूषण हैं न कि भूषणों और फैशनोंके लिये शरीर है । बाहरके पहिनावेके लिये सब ध्यान रखते हैं और अन्दरके शरीरके लिये कोई देखता तक नहीं ।

(४) कई मनुष्य व्यायाम आदि करके अपना शरीर सुडौल करते हैं परन्तु इन्द्रियोंको स्वाधीन रखनेका यत्न नहीं करते । इससे यह होता है कि इन्द्रियोंके दुराचरणमें शरीरका नाश होता है ।

(५) कई लोग विद्याभ्यास आदि द्वारा तथा अन्य विविध प्रकारोंके नियम आदि द्वारा इन्द्रियोंको स्वाधीन करनेका यत्न करते हैं परन्तु अपने मनको स्वाधीन नहीं रखते, जिसके कारण मनके कुविचारोंकी आगमें शरीर और इन्द्रियां भस्म हो जाती हैं।

(६) कई लोग सुविचार और ज्ञान सम्पादन द्वारा अपने मनको सुसंस्कृत करना चाहते हैं परन्तु अपनी बुद्धिका ख़याल ही नहीं करते। इनको पता नहीं होता है कि बुद्धि की प्रेरणासे ही सब शरीरके आंतरिक और बाह्य व्यापार चलते रहते हैं तथा बुद्धिकी योग्यतासे ही मनुष्यकी योग्यता समझी जाती है।

(७) यदि कोई मनुष्य बुद्धिको विज्ञानसम्पन्न और शांत करना चाहता होगा तो उसको आत्माकी शक्ति बढानेका विचार तक नहीं होता। वह बुद्धिकी यौगिक सिद्धियों और चमत्कारोंमें ही लीन हो जाता है।

तात्पर्य मनुष्य इतना बहिर्मुख हो रहा है कि उसको अपने अन्दर की अपेक्षा बाहिरके पदार्थोंका अधिक फिक्र है। यदि इस जगतमें सब से बड़ा कोई भ्रम है तो यही है। प्रत्येक मनुष्यको सोचना चाहिए कि वास्तवमें मुझे किसकी अधिक आवश्यकता है। मनुष्यके अन्दर निम्न लिखित शक्तियां हैं—

(१) आत्मा—सतत पुरुषार्थ करनेका धर्म।

(२) बुद्धि—अविकारी शुद्ध ज्ञान धारण करनेका धर्म। भक्ति, श्रद्धा, विश्वास आदिका स्थान।

(३) मन—चिंतन, मनन, साराशार विचार करनेका धर्म। तर्क वितर्क कुतर्कका स्थान।

(४) इन्द्रिय—ज्ञान इन्द्रिय—शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध इनपांच विषयोंका ग्रहण करनेवाले कर्ण, त्वचा, नेत्र, जिह्वा, नाक ये पांच ज्ञानेन्द्रिय।

कर्मेन्द्रिय—गौचद्वार, (उपस्थ) जननेन्द्रिय, हाथ, पांव, और वाक् ये पांच कर्म करनेवाले इन्द्रिय।

(५) शरीर—जिसके अन्दर उक्त इन्द्रियादिक रहते हैं अं
इनके अतिरिक्त भी बहुतसे उत्कृष्ट साधन जिस
विद्यमान हैं।

(६) विषय—शरीरका उत्तम योग क्षेम चलनेके साधन जो स
म्पूर्ण जगत्में प्राप्त होते हैं।

सबसे अन्दर आत्मा है और क्रमशः बुद्धि आदि उसके बहिर हैं। अ
न्दरका बिगाड हो जानेसे बहिरके स्वयं निकम्मे हो जाते हैं। इस लि
अन्दरके पदार्थोंकी ओर विशेष ध्यानसे देखना चाहिये। परन्तु जगत्
सर्वसाधारण मनुष्य बाह्य पदार्थोंका विशेष खयाल करते हैं और अन्द
के मुख्य पदार्थोंकी ओर आते तक नहीं। यदि जगत्में सबसे बडा को
आश्चर्य है तो यही है। वास्तवमें देखा जाय तो मनुष्यको उचित है कि
वह आंतरिक शक्तियोंको विशेष प्रकार ठीक करे। परन्तु आंतरिक शक्ति
योंका विचार करनेवाले मनुष्य बहुत ही थोडे होते हैं।

उक्त साधारण पुरुषोंके मार्गसे भिन्न कई मनुष्य हैं कि जो बाह्य श
क्तियोंकी ओर उदासीन रहते हुए केवल आंतरिक शक्तियोंकाही खयाल
करते रहते हैं। केवल बाह्य शक्तियोंका खयाल करनेवाले जैसे गिरते हैं
वैसेही केवल आंतरिक शक्तियोंका विचार करनेवालेभी गिर जाते हैं।
दोनों शक्तियां, आंतरिक और बाह्य, परस्पर सहाय्यकारी हैं। किसी एक-
का त्याग करनेसे हानि है। इसलिये वैदिक धर्ममें दोनोंका सम विकास
करनेकी आज्ञा है।

वैदिक धर्मकी दृष्टिसे आत्मा, बुद्धि, मन, इन्द्रिय, शरीर, घर, समाज, नगर, राष्ट्र आदि सबका विकास योग्य रीतिसे करनेकी आवश्यकता है। किसीभी एककी ओर ध्यान न देना योग्य नहीं है। सभी अपने अपने स्थानमें मुख्य हैं और एककी उन्नति दूसरोंकी सहायतासे होती है। वैदिक धर्मका लक्षण 'अभ्युदय और निश्रेयस' है। इनकी बांट निम्न प्रकार है।

(१) निश्रेयस—आत्मा, बुद्धि, मन, इन्द्रिय, इनकी उन्नति,
पूर्णता और इनकी शक्तियोंका पूर्ण विकास।

(२) अभ्युदय—शरीर, कुटुम्ब, घर, जाति, समाज, नगर, राष्ट्र, आदिकी उन्नति, पूर्णता और इनकी निज शक्तियोंका पूर्ण विकास।

अभ्युदय और निःश्रेयस मिल कर धर्म है। इस से स्वयं पता लग सकता है कि "वैदिक-धर्म," का कार्यक्षेत्र कितना सर्वांग पूर्ण है। अन्य धर्मों में इस प्रकार समविकास का भाव नहीं है। किसी में एक बात की अधिकता है तो किसी में दूसरे बात की है। सब बातों का पूर्णतया समान विचार करने वाला वही एक धर्म है कि जो परम पूज्य वेद द्वारा बताया है, देखिए—

वाङ्म आसन् नसोः प्राणश्चक्षुरक्ष्णोः श्रोत्रं कर्णयोः ॥
अपलिताः केशा अशोणा दन्ता बहु बाह्वोर्बलम् ॥ १ ॥
ऊर्वोरोजो जंघयोर्जवः पादयोः ॥
प्रतिष्ठा अरिष्टानि मे सर्वात्माऽनिभृष्टः ॥ २ ॥
तनूस्तन्वा मे सहे दतः सर्वमायुरशीय ॥
स्योनं मे सीद पुरुः पृणस्व पवमानः स्वर्गे ॥ १ ॥
प्रियं मा कृणु देवेषु प्रियं राजसु मा कृणु ॥
प्रियं सर्वस्य पश्यत उत शूद्र उतार्ये ॥ १ ॥

अथर्व० १९ सू० ६०, ६१, ६२,

(१) मे आसन् वाक्—मेरे मुखमें उत्तम वक्तृत्व शक्ति रहे।
(२) मे नसोः प्राणः—मेरी नासिका में प्राण रहे।
(३) मे अक्ष्णोः चक्षुः—मेरे नेत्रोंमें देखनेकी शक्ति रहे।
(४) मे कर्णयोः श्रोत्रं—मेरे कानों में सुननेकी शक्ति रहे।
(५) मे अपलिताः केशाः—मेरे बाल सफेद न हों।
(६) मे दन्ताः अशोणाः—मेरे दांत निर्मल रहें।
(७) मे बाह्वोः बहु बलं—मेरे बाहुओं में बहुत बल रहे।
(८) मे ऊर्वोः ओजः—मेरे ऊरुओं में बडी शक्ति रहे।
(९) मे जंघयोः जवः—मेरी जंघाओंमें वेग रहे।
(१०) मे पादयोः प्रतिष्ठा—मेरे पांवोंमें स्थिरता रहे।

(११) मे सर्वा अरिष्टानि-मेरे सब (आंतरिक) अवयव उत्तम निरोग रहें।

(१२) मे आत्मा अनिभृष्टः-मेरा आत्मा पतित न होवे।

(१३) मे तन्वा तनूः-मेरे शरीरके साथ शरीरकी सब (बाह्य) इंद्रियाँ रहें।

(१४) मे सहे दतः-मेरी श्रम सहन करनेकी शक्तिके साथ मेरे दांत शरीरमें रहें।

(१५) सर्व आयुः अशीय-मुझे पूर्ण आयु प्राप्त होवे।

(१६) स्योनं मे सीद-मेरी (बुद्धि में) शांति रहे।

(१७) मे पुरु पृणस्व-मुझे पूर्णता प्राप्त होवे।

(१८) स्वर्गे पवमानः-मैं शुद्ध होकर स्वर्ग में पहुंच जाऊं।

(१९) मा देवेषु प्रियं कृणु-मुझे ज्ञानियोंमें प्रिय करने वाला बनाओ।

(२०) मा राजसु प्रियं कृणु-मुझे क्षत्रियों में प्रिय करो।

(२१) मा अर्ये प्रियं कृणु-मुझे वैश्यों में प्रिय करो।

(२२) मा शूद्रे प्रियं कृणु-मुझे शूद्रों में प्रिय करो।

(२३) उत सर्वस्य पश्यतः प्रियं-निश्चय से सब देखनेवालों में मुझे प्रिय करो अर्थात् मैं सब का हित करनेवाला बन जाऊं जिससे सब समझदार लोग मुझपर प्रीति करें।

इस प्रकार वैदिकधर्मका उपदेश है। अपनी शारीरिक शक्तियोंके विकास के साथ राष्ट्रीय कर्तव्योंको भी वेदने उत्तम प्रकारसे बताया है। आश्चर्य यह है कि छोटीसे छोटी बातको भी वेदने नहीं छोडा। दांतों पर पीला रंग जो मलीनता के कारण होता है और जिस के कारण दांत जल्दी गिर जाते हैं, उन की ओर ख्याल करने के लिये

जैसा उपदेश किया है वैसा ही 'लोकमान्य' नेता बननेके लिये ही कहा है।

सुदृढ शरीर रखनेका जो इन मन्त्रों में उपदेश दिया है उस विषय में पाठकोंको ख्याल रहना चाहिये कि दवाई आदिका सेवन नहीं लिखा है। इसका हेतु यही है कि अपनी इच्छा शक्तिको चित्तकी एकाग्रता से ऐसा प्रबल करना चाहिये कि इसी इच्छा शक्तिसे निरोगता और बल प्राप्त हो सके।

पाठकोंको यहां स्मरण रहे कि निर्बल मनके कारण व्याधियोंका उपद्रव होता है और सबल मनके कारण उत्साह पूर्ण आरोग्य प्राप्त हो सकता है। परमेश्वर पर दृढ विश्वास और मनका सबल निश्चय इन दो साधनों से न केवल अपने आरोग्यकी प्राप्ति होती है परन्तु केवल इन ही दो साधनोंके द्वारा दूसरों को भी आरोग्य दिया जा सकता है। योगसाधनका यही फल है।

जितना औषध आदि बाह्य साधनों पर विश्वास अधिक बढेगा उतनीही आरोग्यता कम होगी। इसलिये मनुष्यको अपनी बाह्य शक्तियों के साथ आंतरिक शक्तियोंके विकासकी ओर भी अवश्य ध्यान देना चाहिये।

मनुष्य आंतरिक शक्तियोंको छोड बाह्य जगतमेंही केवल भ्रमते रहते हैं यही सबसे बडा आश्चर्य है।

अदीनाः स्याम शरदः शतम् ।

"दीन न बनते हुए सौ वर्ष रहें।" यह वैदिक धर्मका ओजस्वी उपदेश है, वैदिक धर्मियोंको यह वचन सदा अपने सामने रखना चाहिए। दीन और दुर्बल, हीन और कमजोर; निस्तेज और निर्वीर्य, इस प्रकार जो हीन जीवन है, वह अधार्मिक जीवन है। जहां धर्म है, वहां अवश्य "अदीनता" रहेगी ही।

क्या आपको पता नहीं है कि, जैसे मनुष्यके विचार होते हैं, वैसाही मनुष्य बन जाता है ? जैसे शब्द आप बोलते हैं वैसेही आपके भाव बनते जाते हैं ? जो दृश्य आप देखते हैं, वैसेही संस्कार आपके मनपर स्थिर होते जाते हैं, जो आप सुनते हैं उससे आपकी बुद्धिका विकास अथवा संकोच हो रहा है, जिसको आप स्पर्श कर रहे हैं वह आपको विशेष अनुभव प्रतिक्षणमें दे रहा है, जो आप खाते और पीते हैं उससे आपका मन उच्च अथवा नीच बनता जाता है, उसी प्रकार आप जिसकी खुशबू अथवा बदबू ले रहे हैं वे पदार्थ भी आपपर अपना असर जमा रहे हैं। तात्पर्य यह है कि जगत्में जिस पदार्थके साथ आपका संबंध आ रहा है, वह पदार्थ अपना उच्च अथवा नीच भाव आप पर स्थापित कर रहा है। क्या इसका आपने कभी विचार किया है ? यदि आपने इसका विचार किया होगा, तो आप निःसंदेह अपने आपको विशिष्ट परिस्थितिमें ढालनेका यत्न कर रहे होंगे।

आपको अपने शब्द सोचकर बोलने चाहिए और दूसरेके अच्छेही शब्द सुनने चाहिएँ। इसी प्रकार अन्य स्पर्श, रस, रूप, गंध आदि विषयोंके संबंधमें भी समझिए। आप अपने शरीरको एक प्रकारका जहाज समझिए और इस संसारको समुद्र समझिए।

इस उपमासे आपको पता लग जायगा कि, आपको कितना संभालकर अपना मार्ग क्रमण करना चाहिए। तूफानकी वायु बडी जोरसे चल रही है, इसमें यदि आप सावधान न होते हुए, अपने जहाजको हवाके साथही छोड़ देंगे, तो उसकी क्या दशा होगी, आपही सोचिए। यदि आप सोचविचार करके अपने विषयोंका ग्रहण नहीं करेंगे, तो किस रीतिसे "अदीनता" प्राप्त कर सकेंगे? अदीनता प्राप्त करनेके लिये आपको विशेष प्रकारका ही जीवन व्यतीत करना चाहिए।

वेद कहता है कि "हम कानोंसे अच्छी बातें सुनें, आंखोंसे अच्छे पदार्थ ही देखें, और सुदृढ शरीर बनाकर आयुकी समाप्तितक देवताओंका सत्कार करें, (ऋ. १।८९।८)" तथा "हमारा मन शुभ संकल्प करनेवाला बने। (यजु. ३४।१)" क्या ये मंत्र आपको एक विशेष मार्गकी तरफ नहीं ले जा रहे हैं? जो मार्ग इन मंत्रोंद्वारा वारंवार सूचित किया जा रहा है वही मार्ग आपको अनुसरण करना चाहिए।

यदि आप जानेंगे कि, "अपने विचारोंके अनुसार अपने जीवनमें परिवर्तन होता है," तो आप निःसंदेह, विना सोचे और समझे, अपने मनमें जैसा चाहे वैसा विचार आने नहीं देंगे। आपको कईयोंका उपदेश सुनकर यह ख्याल हुआ है, कि मैं दीन और दुर्बल हूं, कई भजन दीन हीन विचारोंसे भरेहुए सत्संगोंमें गाये जाते हैं, तात्पर्य अपनी हीनता और दुर्बलताका ही आप रातदिन ध्यान कर रहे हैं; यही कारण है, कि आपके अंदर विलक्षण शक्ति रहनेपरभी आप हीन और दीन बन रहे हैं? क्या यह आश्चर्य नहीं है कि, आप अपनेही हीन विचारोंके कारण अपने ऊपर हीनता ले रहे हैं? यदि आप सोचेंगे तो आपको पता लग जायगा, कि आपकी शक्तियां कितनी अद्भुत हैं। इस विषयमें वेदका उपदेश अत्यंत स्पष्ट है।

वेद बता रहा है कि, आप परमेश्वरके अमृतपुत्र हैं, उसी अद्वितीय जगदीशके आप भाई, मित्र और प्रिय शिष्य हैं। उस जगदीशमें और आपमें कोई स्थान और कालका अंतर नहीं है। आपही सोचिए तो सही कि, उस अद्वितीय राजाधिराज के पास नित्य रहनेवाले आप

हैं उसके साथी और मित्र आप ही हैं, फिर उसके राज्यमें आपको डरानेवाली कौनसी शक्ति हो सकती है? कौन आपको डरा सकता है और कौन आपको गिरा सकता है? मामूली राजाके पास रहनेवालेकी उस साधारण रियासतमें कितनी प्रतिष्ठा होती है, फिर आप तो जगतके अधिराजाके पास सदाही रहते हैं फिर आपकी योग्यता कैसी हीन होसकती है? क्या आगमें कोई पदार्थ रहता हुआ, सर्दीसे दुःखी हो सकता है? क्या कभी शीतल सरोवरमें तैरता हुआ मनुष्य प्याससे मर सकता है? वेद जीवात्माकी योग्यता हीन और दीन नहीं मानता। जो अपने आपको हीन दीन समझते हैं वे वेदका तत्व नहीं जानते। वेदमें परमात्माके और जीवात्माके नाम प्रायः एक ही हैं। "परमेष्ठी" शब्दका प्रयोग केवल परमात्मा वाचक है, इसके सिवाय बाकीके सबही नाम बहुत करके दोनोंके लिये समान ही हैं। देखिए—

(१) आत्मा—यह आत्मा शब्द जीवात्मा और परमात्माके लिये प्रयुक्त होता है। "अत्—सातत्यगमने" इस धातुसे यह शब्द बनता है कारण "सतत पुरुषार्थ, सतत प्रयत्न," करनेका धर्म इनमें समान है, यह बात स्पष्ट हो रही है। यदि परमात्माका कर्म सब विश्वमें व्यापक हुआ, तो आपका कर्म अपने शरीरमें व्यापक होगा। स्थानकी मर्यादा आप क्षणमात्र मान लीजिए, परंतु उससे गुणके स्वरूपमें तो कोई भेद नहीं हो सकता।

(२) इंद्र—यह शब्दभी जीवात्मा और परमात्माके लिए वेदमें आता है। जीवात्मा इंद्र है और उसकी शक्ति शरीरमें इंद्रियोंके द्वारा प्रकट हो रही है। परमात्मा विश्वमें इंद्र है और उसकी शक्ति सूर्य चंद्रादिकोंमें प्रकट हो रही है। इंद्र शब्दका अर्थ "परम ऐश्वर्यवान्" है। आप इंद्र हैं, और इसीलिये अपने आपको "परम ऐश्वर्यवान्" समझिए। यहां समझनेका तात्पर्य युक्तिसे प्रमाणसे नहीं। युक्तियां नास्तिकोंका मुख बंद करनेके लिये होती हैं। आस्तिकोंके लिये युक्तिहीन विश्वास, जो अनुभवसे उत्पन्न होता है, चाहिए। आप इंद्र हैं, वेद कह रहा है कि आप इंद्र हैं, आप देवोंके राजा हैं, आपके शरीरमें देवोंके अंश हैं; सूर्यदेवताका अंश आपके आंखोंमें है, अश्विनी कुमार आपके नाकमें हैं,

मृत्यु आपके शिखमें है, इसी प्रकार अन्य सब देवतायें आपके शरीरमें हैं, इन सब देवताओंका अधिष्ठाता इंद्र, आपके शरीरमें, आपके सिवाय और कोई भी नहीं है। इस बातको जान लीजिए और अनुभव कीजिए। आप इंद्र हैं, और आपकी शक्तियां सब अन्य ३३ देवताओंमें जा कर उनको जीवन दे रही हैं। क्या आपका विश्वास इसपर नहीं है? क्या आप इस वैदिक तत्वको माननेमें संकोच कर रहे हैं? क्या आपको इस पर विश्वास रखना ठीक प्रतीत नहीं होता? यदि इसमें वेदपाठ करनेपरभी आपके मनमें संदेह है, तो आप भिन्न प्रकार विचार कीजिए। आप जिस समय चाहे बैठ सकते हैं और जिस समय चाहते हैं, उठते हैं; बहुतसे आपके अवयव आपकी इच्छाके कार्य कर रहे हैं, क्या इससे आपको अनुभव नहीं होता कि, आप इस शरीरके प्रेरक चलानेवाले हैं? यदि आपको इतनेपर भी अनुभव नहीं है, तो आप एक दो दिन अपनी इच्छा और अपने कर्म इनका परस्पर संबंध देखिए और अनुभव लीजिए कि जो आप चाहते हैं बहुधा वही कर रहे हैं या नहीं? यदि यही शक्ति आप अपनेमें बढायेंगे तो आपको निःसंदेह अनुभव होगा कि आप जो चाहेंगे वही बनता जायगा। आप इस बातका अनुभव कर लीजिए कि आपकी आंख आपकी इच्छाके बिना देख नहीं सकती, आपकी आज्ञाके बिना आपका कान सुननेमें असमर्थ है, इसी प्रकार अन्य (देव) इंद्रिय भी आपकी शक्तिसे ही कार्य कर सकते हैं। अपने ही शरीरमें अनुभव कर लिजिए कि, आपका वैभव कितना बडा है। आप सब देवोंके राजा हैं, ३३ देव आपके ३३ अवयवोंमें हैं। उनको आप चला रहे हैं। ३३ देवताओंके अंश जिस आपके आत्माके अनुचर हैं, उस आपकी योग्यता हीन और दीन कौन कह सकता है? वेद कहता है कि आप इंद्र हैं, आप देवोंके अधिष्ठाता हैं। आप अपने ही शरीरमें इन देवताओंसे प्रतिक्षण कार्य करा रहे हैं, और फिर भी आप अपनी विलक्षण शक्तिको भूल रहे हैं यह कितना आश्चर्य है? इस लिए अपनी आत्मशक्तिको न भूलिये।

(३) अग्नि—यह अग्निशब्द भी जीवात्मा परमात्माका वाचक है। यह शब्द तेज गति और उष्णताका वाचक है। यदि परमात्मा का अग्नि

सब विश्वभर में व्यापक है तो आपकी शक्ति अपने शरीरमें फैल रही है। एक बडाभारी और बडेबडे जंगलोंको जला रहा होगा; और दूसरा छोटा अग्नि होगा और एकही तिनके को जला रहा होगा; परंतु आप इसी बातको सोचिए कि दोनोंके अग्निपन में क्या भेद है? छोटे अग्निमें भी वही गुण हैं और बडेमें भी वही गुण हैं। आप अपने आपको अग्नि समझ लीजिए, आपका परिमाण और आकार छोटा है तथापि गुणकी दृष्टिसे आप हीन नहीं हैं।

(४) ब्रह्म—यह ब्रह्म शब्दभी जीवात्मा परमात्माका वाचक वेदमें है। ज्ञान और महत्व ये इसके अर्थ हैं। परमात्मा सर्वज्ञ है परंतु आपकाभी चित्स्वरूपही है। परमात्माका महत्व सबसे श्रेष्ठ है तथापि आपके शरीरमें आपका कोई कम महत्व नहीं है, जब इस शरीरको आप छोड देते हैं, तब इस शरीरकी कितनी दुर्दशा होती है, इसका विचार कीजिए, तो आपको पता लग जायगा कि यहां इस शरीरमें आपका महत्व कितना है। अथर्ववेदमें कहा है कि "जो पुरुषमें ब्रह्म देखते हैं वे परमेष्ठीको जानते हैं।" (अ. १०।७।१७) इस लिये यदि आप अपनी महत्ताको नहीं जानते, तो संभवही नहीं है कि, परमात्माको भी आप जान सकें। परमात्माका ज्ञान आपको पीछे होगा, उससे पहिले आपको स्वयं अपना ज्ञान प्राप्त करना चाहिए।

(५) सोम—इसके अनेक अर्थ हैं, परंतु यह शब्द भी जीवात्मा परमात्माका वाचक वेदमें है। इसके शांति आदि गुण प्रसिद्ध हैं जो आत्मा परमात्मामें समान हैं। षोडश कलाओंसे जैसा चंद्रमा युक्त है, वैसाही जीवात्मा युक्त है। "षोडशी अथवा षोळशी इंद्र" वेदमें प्रसिद्ध है, वही सोलह कलाओंसे युक्त आत्मा है। जब जीवात्मामें भी सोलह आत्मिक शक्तियां विद्यमान हैं, तब कौन उसको हीन कह सकता है? आप अपनी सोलह शक्तियोंका अपने व्यवहारमेंभी अनुभव कर सकते हैं। यदि सभी शक्तियोंका अनुभव नहीं हो रहा है, तो न सही, जितना अनुभव आ रहा है, उससे आप अनुमान कर सकते हैं कि आप कैसे [illegible]म शक्तिशाली हैं।

इसी प्रकार वरुण, मित्र, पूषन् आदि सबही शब्द प्रायः जीवात्मा परमात्माके वाचक वेदमें हैं। एक "परमेष्ठी" शब्द ही ऐसा है कि जो जीवात्माका वाचक नहीं है। परमेष्ठी शब्द अपरिछिन्न आत्माका अर्थात् परमात्माका वाचक है, और परिच्छिन्न जीवात्माके वाचक अन्य शब्द होते हुए साथ साथ परमात्माके भी वाचक होते हैं। आप जानते ही हैं कि, वेदमें सब नाम यौगिक और गुणबोधक होते हैं। सभी शब्द अन्वर्थक अर्थात् सार्थ हुआ करते हैं। इस लिये वेद जिसका जैसा वर्णन करता है, उस दृष्टिसे वह वैसाही होता है। जो शब्द जीवात्मा और परमात्माकेलिये समान हैं वे बता रहे हैं कि, दोनोंका साम्य उन गुणोंमें है। जैसा "अज" शब्द बता रहा है कि जीवात्मा और परमात्मा वस्तुतः अजन्मा हैं, तथा प्रेरक हैं। दोनोंके गुण समान होनेके कारणही दोनोंके लिये "अज" शब्द प्रयुक्त होता है। इसी प्रकार अग्नि, इंद्र आदि शब्दोंके विषयमें समझ लीजिए।

जब दोनोंके गुण बहुधा एक जैसे ही हैं, तो जीवात्माकी हीनता कैसे सिद्ध हो सकती है? पहाडोंको जलानेवाला अग्नि बेशक बडा है, परंतु एक तिनकेको जलानेवाला अग्नि भी वैसे ही गुणोंसे सुशोभित है, और वह भी अपनी शक्तियोंका विकास करनेका सामर्थ्य रखता है। जीवात्मा यद्यपि परिछिन्न है तथापि इसकी शक्तियां कहां तक बढ सकती हैं, इसकी मर्यादा इस समय तक किसीनेभी निश्चित नहीं की है। सभी शास्त्रकार जीवात्माको परिछिन्न मानते हैं, परंतु इसकी सब शक्तियोंके विकासकी मर्यादा किसीने लिखी नहीं है। क्यों कि इसकी विकासकी मर्यादा इसके पुरुषार्थ पर निर्भर है। आपकी शक्ति उतनी ही है, कि जितना पुरुषार्थ आपने किया था और आप जितना कर रहे हैं। इस लिये परमात्माकी अपेक्षा जीवात्माकी परिछिन्नता मानने पर भी इसको हीन और दीन कहना अवैदिक है और निःसंदेह आत्मघात है।

आप जब अपनी शक्तिको जानेंगे तब आप अपनेको कभी हीन और दीन नहीं कह सकते हैं। ये हीन दीनताके विचार अवैदिक हैं। मतमतांतरोंके कारण ये वैदिक धर्मियोंके मनमें घुस गये हैं। और वैदिक धर्मके

अभिमान जागृत होनेपरभी, वेदमंत्रोंके ज्ञानकी जागृति न होनेके कारण, इस समयमें भी, वेही विचार हममें जैसेके तैसेही हैं।

वेद आपको कह रहा है कि, आप इस वाक्यका नित्य स्मरण रखिए कि "अ-दीनाः स्याम शरदः शतं।" हम सौ वर्ष पर्यंत दीन और दुर्बल न होते हुए बढते रहेंगे। पराधीन और परतंत्र कभी नहीं रहेंगे। स्वातंत्र्य और स्वावलंबन हमारा नैसर्गिक अधिकार है। आप हीन और मलीन विचारोंको अपने मस्तिष्कमें स्थान न दीजिए। आप ऐसे ओजस्वी विचार अपने मस्तिष्कमें रखिए कि जो उत्साहका वायुमंडल आपके चारों ओर उत्पन्न कर सकते हों। अपने मित्र और अपने साथी ऐसे ही चुन लीजिए कि जो उक्त प्रकारके विचारही धारण करते हैं।

आप यत्न करके "अ-दीन" बनिए, आप अपने आपको निर्भय समझिए और उन्नतिकी शक्ति अपनेही अंदर अनुभव कर लीजिए। फिर आप सचमुच कह सकते हैं कि—

"अ-दीनाः स्याम शरदः शतम्।
भूयश्च शरदः शतात्॥"

सौ वर्षकी आयुका कार्य।

मनुष्यकी आयु साधारणतः सौ वर्षकी है। विशेष प्रयत्न करनेपर बढती है तथा दुराचरण करनेसे आयु घटती भी है। योगका साधन, आसन, प्राणायाम आदि नियमपूर्वक करनेसे, आहारविहार योग्य प्रमाणसे करनेसे, चिंताको दूर करने और मन शांत और प्रसन्न रखनेसे आयुकी वृद्धि हो सकती है। आजकल अल्प आयुमें मनुष्योंकी मृत्यु हो रही है; इसका कारण ब्रह्मचर्यका अभाव, दुर्व्यसनोंका प्रभाव तथा अन्यप्रकारके हीन व्यवहार है।

मद्य, तमाखू, चा, काफी आदि दुष्ट व्यसन प्रतिदिन फैल रहे हैं। व्यसनी मनुष्यका शरीर क्षीण होताही है और उसका नाश अल्प आयुमें होगा ही। परंतु विशेष शोककी बात यह है कि, व्यसनी मनुष्यके संतानोंमें जन्मसे रोगी रक्त होनेके कारण अस्थिर वीर्य होता है। इसलिये व्यसनी मनुष्योंके संतान न केवल निर्बल ही होते हैं परंतु सदा रोगी होते हैं। तमाखू पीनेवाले पिताके पुत्र तारुण्यके पूर्वही वीर्यहीन होते हैं तथा जवानीमेंही बुड्ढे दीखने लग जाते हैं। शराब पीनेवाले पिताके पुत्र प्रायः निर्बुद्ध और चंचलवृत्तिके निकलते हैं। चा पीनेवाले मातापिताके संतान कब्ज बद्धकोष्ठ आदि बीमारीसे क्लेश भोगते हैं। इस लिये व्यसनाधीन मनुष्यको उचित है कि वह अपने संतानोंके हितकेलिये तथा राष्ट्रके उपकारकेलिये व्यसनोंसे दूर रहे और योगाभ्यासद्वारा अपना स्वास्थ्य ठीक करकेही उत्तम वीरसंतान उत्पन्न करे।

वेदका आदर्श यदि मनुष्यके मनमें जागृत रहेगा तो निःसंदेह मनुष्य व्यसनोंके कीचडमें गिर नहीं सकता। दीर्घ आयु प्राप्त करनेके लिये प्रतिदिन प्रयत्न होना चाहिए। 'भूयश्च शरदः शतात्।' 'सौ वर्षसेभी अ-

चिक जीना चाहिए' यह वेदका कथन है। हे प्रिय पाठको! आपके मनमें वेद विषयमें श्रद्धा है इसमें कोई संदेहही नहीं है। परंतु केवल श्रद्धासे कार्य नहीं चलेगा। क्या आप 'प्रतिदिन दीर्घ आयुकी प्राप्तिके लिये प्रयत्न कर रहे हैं?' यदि नहीं तो आपकी वेदपरकी श्रद्धाका तात्पर्य क्या है? प्रतिदिन प्रयत्न होगा तोही कार्यभाग होगा, यह स्मरण रखिए। सौ वर्ष जीनेका आपको जन्मसिद्ध अधिकार है, आप अपनी आयु बढा भी सकते हैं। यदि प्रयत्न होगा तो निःसंदेह आयुकी वृद्धि होगी।

आप छोटेपनसे बालकोंके मनमें यह बात डालनेका प्रयत्न कीजिए कि उनके अनेक धार्मिक कर्तव्योंमेंसे सबसे मुख्य धार्मिक कर्तव्य यह है कि आयुकी वृद्धिकेलिये प्रतिदिन प्रयत्न करना। यदि आयु होगी तो सब धर्मका आचरण हो सकता है, यदि आयु न होगी तो क्या धर्म पाला जा सकता है? इसलिये आयुकी बडी भारी आवश्यकता है। मनके निश्चयसे ही प्रयत्न किया जासकता है और प्रयत्नसे सिद्धिभी प्राप्त हो सकती है।

सौ वर्षकी आयु प्राप्त करके जो कार्य करना वेदको अभीष्ट है वह निम्न मंत्रोंमें आप देख सकते हैं—

पश्येम शरदः शतं। जीवेम शरदः शतं॥

ऋ. ७।६६।१६

पश्येम शरदः शतं। जीवेम शरदः शतं॥
शृणुयाम शरदः शतं। प्रब्रवाम शरदः शतं॥
अदीनाः स्याम शरदः शतं। भूयश्च शरदः शतात्॥

यजु. ३६।२४

पश्येम शरदः शतं। जीवेम शरदः शतं॥
बुध्येम शरदः शतं। रोहेम शरदः शतं॥
पूषेम शरदः शतं। भवेम शरदः शतं॥
भूयसीः शरदः शतात्।

अथर्व. १९।६७

पश्येम शरदः शतं। जीवेम शरदः शतं॥
नन्दाम शरदः शतं। मोदाम शरदः शतं॥

भवाम शरदः शतं। शृणवाम शरदः शतं॥
प्रब्रवाम शरदः शतं। अजिताः स्याम शरदः शतं॥
तै.आरण्य. ४।४२

यह वैदिक धर्मका संदेशा है। आयुकी भूमिमेंही धर्मका उद्यान लगाना है। आयुभरमें निम्न बातें अवश्य करनी चाहिएँ—

(१) जीवेम शरदः शतं।—सौ वर्ष धार्मिक जीवन व्यतीत करना। सदाचारके साथ दीर्घ जीवन प्राप्त करना।

(२) पश्येम शरदः शतं।—सब जगत्‌का अच्छी प्रकार निरीक्षण करना। नोंही देखना नहीं किन्तु विचारपूर्वक निरीक्षण करना।

(३) शृणुयाम शरदः शतं।—अच्छे उपदेश सुनना बुरी बात नहीं सुनना चाहिए।

(४) बुध्येम शरदः शतं।—सौ वर्षपर्यंत ज्ञानकी वृद्धि करनेका प्रयत्न करना चाहिए। ज्ञानही मानवी स्वरूप है।

(५) प्रब्रवाम शरदः शतं।—जो ज्ञान प्राप्त हुआ होगा उसका परोपकारके लिये दूसरोंको उपदेश करना। ज्ञानप्रचारका कार्य करना।

(६) रोहेम शरदः शतं।—सौ वर्षपर्यंत उन्नतिकी प्राप्ति करनेका कार्य करना।

(७) पूषेम शरदः शतं।—सौ वर्षपर्यंत पुष्ट होनेका प्रयत्न करना। कोई कार्य ऐसा नहीं करना कि जिससे क्षीणता प्राप्त होसके।

(८) भवेम शरदः शतं।—सर्वत्र विजय प्राप्त करना।

(९) नन्दाम शरदः शतं।—आनंदकी प्राप्ति करना।

(१०) मोदाम शरदः शतं।—चित्तकी प्रसन्नता और शांति रखना, कभी चिंता और उद्वेग नहीं करना।

(११) अजिताः स्याम शरदः शतं—कभी पराजित नहीं होना। शत्रुसे अपना बल सदा अधिक रखना।

(१२) अदीनाः स्याम शरदः शतं।—कभी दीनता नहीं धारण करना। सदा उच्चता, उच्च विचार धारण करना और उत्साहका जीवन व्यतीत करना।

(१३) भूयसीः शरदः शतात्।—सौ वर्षसे अधिक आयु प्राप्त करके उस संपूर्ण दीर्घ आयुमें उक्त कार्य उत्साहसे करने चाहिए।

इन मंत्रोंमें मानवी जीवनका धार्मिक कार्यक्रम दिया है। आशा है कि पाठक इन मंत्रोंको प्रतिदिन स्मरण करेंगे और स्वयं पूर्ण आयुकी प्राप्तिके लिये प्रयत्न करके उक्त कार्य करते रहेंगे। वैदिक धर्म प्रतिदिनके आचरणमें लानेका यत्न कीजिए। वैदिक धर्मको केवल शब्दोंमेंही न रखिए। व्याख्यानोंसे प्रचार न कीजिए परंतु अपने प्रतिदिनके व्यवहारसे धर्मका प्रचार कीजिए।

विषयसूची.

पृ.

मृत्युको दूर करो ३
ब्रह्मचारीका अंतिम संदेश ४
मृत्युसे बोध. ५
मृत्युको दूर करनेका उपाय ९
(१) मृत्युका भय ... ... ,,
(२) पुरुषार्थ पर विश्वास १०
(३) जन्म और मरणका संबंध ११
(४) मरणका स्वरूप १२
(५) धर्म और मृत्यु १९
(६) इच्छामरणकी सिद्धि २२
(७) अमरत्वकी प्राप्ति २३
मृत्युके विषयमें वेदका उपदेश २५
(१) यमदूत और मृत्युके पाश ... ... ,,
(२) मृत्युकी सत्ता २८
(३) मृत्युको हटानेकी विधि ३०
आयुष्य बढाओ ३९
दीर्घ आयुष्य ४५
आत्मविश्वास ४९
उन्नतिका मार्ग ५३
आत्मपरीक्षण ५४
आजही प्रारंभ करो ५७
सबसे बडा आश्चर्य ५८
अदीनाः स्याम शरदः शतं ६४
सौ वर्षकी आयुका कार्य ७१
विषयसूची ७५

योग-साधन-माला।

'**वैदिक धर्म**' वास्तवमें आचार प्रधान धर्म है। वेदका उपदेश केवल मनमें धारण करनेसे, वेदके मंत्रोंका अर्थ समझनेसे, अथवा वैदिक आशयको केवल विचारमें रखनेसे कोई प्रयोजन नहीं निकल सकता, जब तक उस उपदेशके **अनुसार आचरण** नहीं होगा।

'**वैदिक उपदेशका तत्त्व**' आचरणमें लानेके उद्देशसे ही '**योग शास्त्र**' का अवतार हो गया है। प्राचीन कालमें '**योग-साधन**' का अभ्यास सर्व साधारणतः आठ वर्षकी अवस्थामें प्रारंभ किया जाता था। विशेष अवस्थामें इससे भी पूर्व होता था। आठ वर्षकी बालपनकी आयुमें योग साधनका प्रारंभ होनेसे और गुरुके सन्निध रहकर प्रतिदिन योग साधन करनेसे २५।३० वर्षकी अवस्थामें ब्रह्मसाक्षात्कार होना संभव था। अथर्व वेद (कां. १०।२।२९) में कहा है कि "**जो इस अमृत-मय ब्रह्मपुरीको जानता है, उसको ब्रह्म और इतर देव इंद्रिय प्राण और प्रजा देते हैं।**" अर्थात् पूर्ण दीर्घ आयुकी समाप्तितक कार्यक्षम और बलवान इंद्रिय, उत्तम दीर्घ जीवन, और सुप्रजा निर्माणकी शक्ति, ये तीन फल ब्रह्मज्ञानसे मनुष्यको प्राप्त होते हैं। यदि योग्य रीतिसे **योग साधन**

का उत्तम अभ्यास हो गया, तो ब्रह्मचर्य समाप्ति तक उक्त अधिकार प्राप्त होना संभव है ।

इस समय योग साधनके अभ्यासका क्रम बढाने-वाला गुरु उपस्थित न होनेके कारण कईयोंकी इस विषयकी इच्छा तृप्ति नहीं हो सकती। इस लिये **"योग-साधन-माला"** द्वारा योगके सुगम तत्वोंका अभ्यास करनेके साधन प्रकाशित करनेका विचार किया है। आशा है कि पाठक इससे लाभ उठायेंगे ।

इस मालाकी पुस्तकोंमें उतनाही विषय रखा जायगा कि जितना अभ्याससे अनुभवमें आचुका है। पहिले कई सालतक अनेक मनुष्योंपर अनुभव देखनेके पश्चातही इस मालाकी पुस्तकें प्रसिद्ध की जाती हैं। इस लिये आशा है कि पाठक स्थायी ग्राहक बनेंगे और अभ्यास करके लाभ उठायेंगे ।

इस **"योग-साधनमाला"** के पुस्तक एकही वार पढने योग्य नहीं होते, परंतु बारबार पढने योग्य होते हैं। तथा इनमें जो मंत्र दिये जाते हैं उनका निरंतर मनन होना आवश्यक है पाठक इस बातका अवश्य ध्यान रखें ।

इस समय तक इस मालाके निम्न पुस्तक, प्रसिद्ध हो चुके हैं:—

संध्योपासना ।

(१)

इस पुस्तकमें निम्न विषयोंका विचार किया है—

भूमिका—संध्योपासनाके विषयमें थोडासा विवेचन, संध्याका अर्थ क्या है, क्या संधिसमयका संध्यासे कोई संबंध है, संध्या दिनमें कितनी वार करना चाहिए, संध्या कहां करना चाहिए, संध्याका समय और स्थान, संध्यामें आसनका प्रयोग, प्राणायामका महत्व, संध्याके अन्य विधि, विशेष दिशाकी ओर मुख करके ही संध्या करना चाहिए या नहीं, स्वभाषामें संध्या क्यों न की जावे, संध्याके विविध भेद, यह संध्या वैदिक है वा नहीं, सप्त व्याहृतियोंका वेदसे संबंध, भूः, भुवः, स्वः, महः, जनः, तपः, सत्यं, खं, ब्रह्म, संध्या करनेवाले उपासकके मनकी तैयारी.

संध्योपासना—आचमन, अंगस्पर्श, मंत्राचमन, इंद्रियस्पर्श, मार्जन, प्राणायाम, अघमर्षण, मनसापरिक्रमण, उपस्थान, गुरुमंत्र, नमन.

संध्योपासनाके मंत्रोंका विचार—पूर्व तैयारी, प्रथम आचमन, आचमनका उद्देश और फल, आचमनके समय मनकी कल्पना, सत्य यश और श्री, अंगस्पर्श, इंद्रियस्पर्शका उद्देश, अंगस्पर्श करनेका विधि, अंगस्पर्श और योगके कोष्टक; संध्या और दीर्घ आयु.

संध्याका प्रारंभ—मंत्राचमन, इंद्रियस्पर्श, हृदय और मस्तक, मार्जन, सप्त व्याहृतियोंके अर्थ, मार्जन, व्याहृतियोंका कोष्टक, प्राणायाम, यज्ञ, प्राणायामसे बलकी वृद्धि, अघमर्षण, उत्पत्ति और प्रलयका विचार, ऋत, सत्य, तप, रात्री, समुद्र, अर्णव, संवत्सर, मनसापरिक्रमण, दिशा कोष्टक १, दिशा कोष्टक २, दिशा कोष्टक ३, दिशा कोष्टक ४, दिशा कोष्टक ५, प्रतीची और प्राची, अधिपति, रक्षिता, इषु, जंभ (जबडा), व्यक्तिका जबडा और समाजका जबडा, प्रगतिकी दिशा, दक्षताकी दिशा, विश्रामकी दिशा, उच्च अवस्थाकी दिशा, स्थिरताकी दिशा, उन्नतिकी दिशा, मनसा परिक्रमणका हेतु, उपस्थान, उत्, उत्तर, उपस्थानका

द्वितीय मंत्र, उपस्थानका तृतीय मंत्र, उपस्थानका चतुर्थ मंत्र, उपस्थानका अंगस्पर्शके मंत्रोंसे संबंध (कोष्टक), ब्रह्मज्ञानका फल, गुरुमंत्र, जपके समय मनकी अवस्था, नमन, 'मैं' पनका भान, मातृप्रेमसे ईश्वरके पास पहुंचना.

इस '**संध्योपासना**' पुस्तकके अंदर इतने विषय हैं। इन विषयोंको देखनसे इस पुस्तककी योग्यताका ज्ञान हो सकता है। अधिक लिखनेकी आवश्यकता नहीं है।

कागज और छपाई बहुत बढिया है। मूल्य १॥) डेढ रुपया है। शीघ्र मंगवाइए। (द्वितीयवार मुद्रित)

संध्याका अनुष्ठान।

(२)

इस पुस्तकमें, संध्याके प्रत्येक मंत्रके साथ अष्टांग योगका जो जो अनुष्ठान करना आवश्यक है, दिया है। इस प्रकार संध्याका अनुष्ठान करनेसे संध्याका आनंद प्राप्त हो सकता है। मूल्य ॥) आठ आने है।

वैदिक प्राणविद्या।

(३)

यह योगसाधन मालाकी तृतीय पुस्तक है। इसमें निम्न विषयोंका विचार किया है—

भूमिका—अवैतनिक महावीरोंका स्वागत। अवैतनिक राष्ट्रीय स्वयंसेवकोंका सन्मान, एकादश रुद्र, महावीर, एकादश प्राण, प्राणोपासना।

वैदिक प्राण विद्या—वेदमें प्राणकी विद्या, **प्राणसूक्त (अथर्व. ११।६)** ईश्वर सबका प्राण, अंतरिक्षस्थ प्राण, प्राणका कार्य, वैयक्तिक प्राण, पूरक कुंभक रेचक और बाह्य कुंभक, प्राणका औषधिगुण, प्राण और रुद्र, सर्वरक्षक प्राण, प्राण उपासना, सत्यसे बल प्राप्ति, सूर्यचंद्रमें प्राण, प्राणोंका प्राण, धान्यमें प्राण, पृथिवी, धारक बैल, प्राणसे पुनर्जन्म, आथर्वणचिकित्सा, मनुष्यज औषधि, दैवी औषधि, आंगिरस औषधि, आथर्वण औषधि,

प्राणकी वृष्टि, प्राणको स्वाधीन रखनेवालेकी योग्यता, पितापुत्र संबंध, हंस, सोऽहं, अहं सः, ब्रह्माका वाहन हंस, कमलासन, मानस सरोवर, प्राणचक्र, नमन और प्रार्थना, जागनेवाला प्राण, प्राणसूक्तका सारांश, **ऋग्वेदमें प्राणविषयक उपदेश**, असुनीति प्राणनीति, **यजुर्वेदमें प्राणविषयक उपदेश**, प्राणकी वृद्धि, प्राण राजा, सत्कर्म और प्राण, प्राणदाता अग्नि, गौवायन प्राण, प्राणके साथ इंद्रियोंका विकास, विश्वव्यापक प्राण, लडनेवाला प्राण, इडा पिंगला सुषुम्ना, गंगा यमुना सरस्वती, सरस्वतीमें प्राण, भोजनमें प्राण, सहस्राक्ष अग्नि, **सामवेद** प्राणवेद, **अथर्ववेदका प्राण विषयक उपदेश**, मैं विजयी हूं, पंचमुखी महादेव, ग्यारह रुद्र, पशुपति, पंच अग्नि, प्राणाग्निहोत्र, प्राणका मीठा चाबुक, अपनी स्वतंत्रता और पूर्णता, प्राणकी मित्रता, ब्रात्यके सप्तप्राण, समयकी अनुकूलता, प्राणरक्षक ऋषि, वृद्धताका धन, बोध और प्रतिबोध, उन्नतिही तेरा मार्ग है, यमके दूत, अथर्वाका सिर, ब्रह्मलोककी प्राप्ति, देवोंका कोश, ब्रह्मकी नगरी, अयोध्या नगरी, अयोध्याका राम, चारों वेदोंके प्राण विषयक उपदेशका सारांश ।

उपनिषदोंमें प्राणविद्या—प्राणकी श्रेष्ठता, रयि और प्राण, प्राण कहांसे आता है, सूर्य और प्राण, देवोंकी घमंड, प्राणस्तुति, प्राणरूप अग्नि, देव, पित्तर, ऋषि, अंगिरा, प्राणका प्रेरक, मारुती, वायुपुत्र, दाशरथी राम, दशमुखकी लंका, अंगोंका रस, प्राण और अन्य शक्ति, पतंग, वसु रुद्र आदित्य, तीन लोक।

इस पुस्तकमें इतने विषयोंका विचार किया है। यह पुस्तक अथर्ववेदके प्राणसूक्त (११।६) की विस्तृत व्याख्या ही है। कागज और छपाई अत्यंत उत्तम। **मूल्य १) एक रु.।**

ब्रह्मचर्य (सचित्र)

(४)

यह योगसाधन मालाकी चतुर्थ पुस्तक है। इसमें ब्रह्मचर्य साधन करनेकी यौगिक क्रिया बताई है। (छप रहा है।)

मंत्री—स्वाध्याय मंडल, औंध (जि. सातारा)

स्वाध्याय मंडलके पुस्तक।

[१] यजुर्वेदका स्वाध्याय ।

(१) य. अ. ३० की व्याख्या । **नरमेध** । "**मनुष्योंकी सच्ची उन्नतिका सच्चा साधन।**" मूल्य १) एक रु. ।

(२) य. अ. ३२ की व्याख्या। **सर्वमेध** । "**एक ईश्वरकी उपासना।**" मू. ॥) आठ आने। (द्वितीयवार मुद्रित)

(३) य. अ. ३६ की व्याख्या । **शांतिकरण** । "**सच्ची शांतिका सच्चा उपाय।**" मू. ॥) आठ आने । द्वितीयवार मुद्रित)

[२] देवता-परिचय-ग्रंथ-माला ।

(१) **रुद्र देवताका परिचय** । मू. ॥) आठ आने ।

(२) **ऋग्वेदमें रुद्र देवता** । मू. ॥=) दस आने ।

(३) **३३ देवताओंका विचार** । मू. =) दो आने.

(४) **देवता विचार** । मू. ≡) तीन आने ।

[३] धर्म-शिक्षाके ग्रंथ ।

(१) **बालकोंकी धर्मशिक्षा** । प्रथमभाग। प्रथम श्रेणीकी धर्म शिक्षाके लिये । मू. -) एक आना। (तृतीयवार मुद्रित)

(२) **बालकोंकी धर्मशिक्षा** । द्वितीयभाग । द्वितीय श्रेणीकी धर्म-शिक्षाके लिये । मू. =) दो आने। (द्वितीयवार मुद्रित)

(३) **वैदिक पाठ माला** । प्रथम पुस्तक । तृतीय श्रेणीकी धर्म शिक्षा के लिये । मू. ≡) तीन आने। (द्वितीयवार मुद्रित)

[४] योग-साधन-माला।

(१) **संध्योपासना**। योगकी दृष्टिसे संध्या करनेकी प्रक्रिया इस पुस्तकमें लिखी है। मू. १॥) डेढ रु.। द्वितीयवार मुद्रित।

(२) **संध्याका अनुष्ठान**। मू. ॥) आठ आने।

(३) **वैदिक-प्राणविद्या**। मू. १) एक रु.

[५] स्वयं-शिक्षक-माला।

(१) **वेदका स्वयं शिक्षक**। प्रथमभाग। मू. १॥) डेढ रु.।

(२) **वेदका स्वयं शिक्षक**। द्वितीय भाग। मू. १॥) डेढ रु.

[६] आगम-निबंध-माला।

(१) **वैदिक राज्य पद्धति**। मू. ≡) तीन आने। (द्वितीयवार मुद्रित)

(२) **मानवी आयुष्य**। मू. ।) चार आने। (,,)

(३) **वैदिक सभ्यता**। मू. ≡) तीन आने। (,,)

(४) **वैदिक चिकित्सा-शास्त्र**। मू. ।) चार आने (,,)

(५) **वैदिक स्वराज्यकी महिमा**। मू. ॥) आठ आने। (,,)

(६) **वैदिक सर्प विद्या**। मू. ॥) आठ आने। (,,)

(७) **मृत्युको दूर करनेका उपाय**। मू. ॥) आठ आने(,,)

(८) **वेदमें चरखा**। मू. ॥) आठ आने। (,,)

[७] ब्राह्मण-बोध-माला।

(२२) **शत-पथ-बोधामृत**। मू० ।) चार आने।

(२३) **गो-पथ-बोधामृत**। (छप रहा है)

मंत्री—स्वाध्याय-मंडल,
औंध (जि. सातारा.)